एकलव्य

लेखक

रामगोपाल भावुक

कमलेश्वर कॉलोनी, (डबरा) भवभूति नगर

जिला - ग्वालियर (म. प्र.) 475 110

07524 225027 ;0751-2470157

1

इन्द्रन नदी का किनारा

घने वृक्षों की छाया में मध्यान्ह के समय विश्राम करते पथिक।

निकट के पुराने वट वृक्ष की छाया में निषादपुरम के कुछ बालक अपने युवराज एकलव्य के साथ गिल्ली डन्डे का खेल, खेल रहे थे । पथिकों का ध्यान उनका खेल देखने में लगा था।

बच्चों ने गिल्ली-डंडा खेलने के लिये मैदान के बीचोंबीच समतल धरती पर तीन अंगुल लम्बा और दो अंगुल गहरा गड्ढा खोदकर गल्ल बना ली थी। एक बालक गिल्ली डंडा लेकर गल्ल के पास पहुंच गया था। उसने गिल्ली को आड़ा करके गल्ल पर रखा। डण्डे की नोंक के सहारे गिल्ली को खूब जोर से उछाल दिया । गिल्ली तेजी से ऊंची उठी और हवा में लहराई। बारह बरस का एकलव्य उसे पकड़ने के लिये पहले से ही सामने तैयार खड़ा था। उसकी श्यामल छवि खेल देखने वालों को मुग्ध कर रही थी। उसने एक छलांग भरी और उछलकर गिल्ली को पकड़ लिया। गिल्ली उछालने वाला खेल से बाहर हो गया था ।

पाला बदल गया। अब एकलव्य के हाथ में गिल्ली डंडा था। उसने भी गिल्ली को गल्ल पर रखा और डंडे की नोक के सहारे उछाला। कई बालकों को छकाते हुए गिल्ली हवा में लहराती बहुत दूर जा गिरी । एकलव्य ने डंडे को गल्ल के ऊपर रखा। सामने जो बालक गिल्ली को पकड़ने का प्रयास कर रहा था,उसने गिल्ली को उठाया और लक्ष्य साधकर डंडे में मारने के लिए फेंक दिया । उस डंडे से बिना टकराये गिल्ली दूर जाकर गिरी ।

अब एकलव्य की बारी थी , एकलव्य ने गल्ल से डंडे को उठाया और डंडे की नोक से गिल्ली की नोक में चोट मार के गिल्ली उछाली । साथ खेल रहे बालकों ने गिल्ली को धरती पर आने से पहले ही पकड़ना चाहा किन्तु एकलव्य ने डंडा बढ़ाकर गिल्ली में चोट मारी और हवा में गिल्ली को पुनः लहरा दिया। होऽऽ होऽऽ करती बालक भीड़ गिल्ली को पकड़ने दौड़ी। किन्तु एकलव्य ने तीव्र गति से गिल्ली के पास पहुंचकर पुनः उसे आगे बढ़ा दिया। इस तरह एकलव्य गिल्ली को इन्द्रन नदी के तट तक ले आया। सभी खिलाड़ी साथी वहां आ गये। इस स्थल से गल्ल तक की दूरी डंडे को आधार बना कर नापी गयी। अब विपक्षी खिलाड़ियों को एक टांग पर उचकते हुए गल्ल तक आना था । आगे एकलव्य था और पीछे उछल कर चलते उसके साथी ।

दिन ढले तक एकलव्य सभी साथी बालकों को लंगड़ी भरवाकर भरपूर छकाता रहा।

वृक्ष के नीचे बैठे पथिक एकलव्य के हस्तकौशल का आनंद लेते रहे ।

यह एकलव्य का प्रतिदिन का कार्यकलाप था । आज एक पथिक ने निषादराज को उनके घर जाकर यह समाचार विस्तार से सुनाए । जब निषादराज हिरण्यधनु ने पथिक की बात सुनी तो

सोचने लगे-एकलव्य सचमुच प्रतिभाशाली है । अब कैसे वत्स की प्रतिभा को प्रखर बनायें ?उन्हे विचार आया-हमारे मन्त्री चक्रधर इस कार्य में मदद कर सकते हैं। वैसे उन्होंने एकलव्य और अपने पुत्र शंखधर की प्रतिभा को देखकर बचपन से ही आचार्य की व्यवस्था कर दी है। किन्तु वे आयार्य उन्हें शास्त्रोंके पठन-पाठन तक सीमित रखे हुये हैं। इससे हमारा मन्तव्य पूर्ण होने वाला नहीं है।

प्रायः यही होता है, जब जब निषादराज हिरण्यधनु के समक्ष अपने किशोर पुत्र एकलव्य की शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न आकर खड़ा होता है तो वे चिन्तित हो जाते हैं। वे समझ नहीं पाते कि किससे परामर्श करें, इस गांव में न कोई विद्वान है न शस्त्र के आचार्य ।यों तो इन्द्रन नदी के घाट से बड़े-बड़े मनीशी और धनुर्धर आते जाते रहते हैं। इन्द्रन के एक सिरे पर पांचाल है तो दूसरी ओर हस्तिनापुर । दोनों राज्य व्यापार के बड़े केन्द्र हैं ।

पांचाल नरेश सहृदयी हैं। उनके यहां का हस्तिनापुर से व्यापार इन्द्रन के रास्ते से चलता है। इस व्यापार में राज्य के अधिकांश नौकाजीवी उद्यम करते हैं। पड़ोस के राज्यों का व्यापार निषादराज के उस भू-भाग पर निर्भर करता है। इसी कारण दोनों ही राज्य उनका सम्मान करते हैं।

वैसे निषादजाति करे भी तो क्या करे, जन्म जन्मांतर से नदियों में नावें चलाकर, आवश्यक वस्तुओं एवं यात्रियों को पहुंचाने का कार्य ही तो उनको विरासत में मिला है। कुछ मत्स्य व्यापार में लगे हैं। इन्द्रन नदी से मछलियॉ पकड़कर उन्हें लम्बे समय तक सुरक्षित रखनेकी कला में दक्ष हैं। बिक्री हेतु उन्हें पांचाल अथवा हस्तिनापुर भेज देने के कार्य में संलग्न हैं। कृशि कार्य से भी कुछ लोग अपनी आजीविका चलाते हैं

घने जंगलों के मध्य बसे निषादपुरम को संपूर्ण वैभव प्राप्त हैं। यहां से आने जाने वालों से दोनों राज्यों की आंतरिक स्थिति से अवगत होने का अवसर मिलता रहता है। यात्रियों के अंतर की बातें उनके नाविक प्यार भरी बातों से निकाल लेते हैं। उन्हें क्या पता कि ये नाविक, नाविक ही नहीं हैं बल्कि सब के सब निषादराज के गुप्तचर भी हैं।इन दिनां दस्युओं का आतंक बहुत बढ़ गया है। वे पथिकों को लूट लेते हैं। यही कारण है कि निषादराज हिरण्यधनु अपने राज्य की प्रगति के लिये चिंतित रहने लगे हैं।

गत वर्ष इस घाट से हस्तिनापुर के प्रमुख शिल्पी सुमत यहां से निकले थे। तब अकस्मात उन्हं यहाँ की वनस्थली देखकर विश्राम करने की इच्छा हुई। जब जब निषादराज हिरण्यधनु का किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलना होता है, तब वे अपने वत्स एकलव्य से उनका मिलन अवश्य कराते। इसी क्रम में सुमत नामक उन प्रमुख शिल्पी से एकलव्य को भी उनने मिला दिया था।वे एकलव्य के बात करने के अंदाज और उसकी लगन व भीतर छुपी प्रतिभा से से बहुत ही प्रभावित हुये। उसका चौड़ा माथा, लम्बी नाक, बड़े बड़े कान, मन कोलुभाने वाला सांवला रंग प्रमुख शिल्पी के समक्ष, उसके आगत उज्जवल भविश्य की भविश्यवाणी करने मेंसहायक हो रहा था। उनके लम्बे हाथ एवं घंघराले बाल देखकर वे समझ गये इस असाधारण बालक ने धरा पर किसी विशेष कार्य के लिये जन्म लिया है।

प्रमुख शिल्पी सुमत निषादराज हिरण्यधनु की सेवा भावना एवं नगरीय कोलाहल से दूर शान्त परिवेश को देखकर निषादपुरम में बहुत दिन ठहरे रहे और हिरण्यधनु को सम्पूर्ण आर्यावर्त के राजनैतिक समाचार सुनाते रहे। बातों ही बातें में उनने तमाम राजवंशो के भीतरी षड़यंत्रों से लेकर क्षत्रियों में प्रचलित संतानोत्पत्ति की विभिन्न रीतियों की कभी चर्चा की ।

एक दिन सुमत एकलव्यकी कोमल अंगुलियों को देखकर बोले, ‘‘वत्स, एकलव्य नदी के तट से चिकनी गीली मिट्टी तो लेकर आओ।’’

आदेश पाकर एकलव्य गीली मिट्टी ले आया। प्रमुख शिल्पी उठे और उस मिट्टी के पास बैठते हुये बोले, ’’मैने अनुभव किया है कि तुम एक श्रेष्ठ मूर्तिकार भी हो सकते हो। इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुम्हें इस मिट्टी से मूर्ति निर्माण करना सिखलाऊँ।’’

उत्सुकतावश एकलव्य उनके पास बैठ गया। उन्होंने मिट्टी की ओर इंगित करते हुये सिखाया, ’’इसमें से थोड़ी सी मिट्टी ले लो।

एकलव्य ने आदेश का पालन किया। सुमत नं उससे शुरू-शुरू में बैल, हाथी, घोड़े, ऊँट आदि की मूर्तियों का निर्माण करना सिखाया। उसके बाद प्रमुख शिल्पी ने आदमी की मूर्ति बनाने की कला सिखाना शुरू किया। कैसे सबसे पहले धड़ का निर्माण किया जाता है ? कैसे हाथ और पैर का अनुपात रखा जाता है ? ऑख, कान और नाक की संरचना कैसे की जाती है ? इस तरह दो-तीन दिन में ही एकलव्य मानव एवं पशुओं की तरह-तरह की मूर्तियों के निर्माण में पारंगत हो गया।

सुमत जी ने देखा था कि एकलव्य अपने छोटे से धनुष से प्रायः बाण चलाने का अभ्यास किया करता है। उनने पूछा तो पता लगा कि निषादराज हिरण्यधनु और उनके मंत्री चकधर वाण चलाने में निश्णात थे। उड़ते हुये पक्षी को वेध देना उनके लिये सहज कार्य था। उन दोनों की धनुर्विद्या में दूर-दूर तक धाक थी। इसके बावजूद वे इस अस्त्र में और अधिक संभावनाओं की खोज में लगे रहते। दोनों बैठते तो यह विशय भी चर्चा में रहा करता। एक दिन चक्रधर ने एकलव्य को अपने शिष्य की तरह सिखाना शुरू किया । सवसे पहले उन्होंने एकलव्य को कितने ही प्रकार के बाणों के फलक बनाना सिखलाया। फिर धनुष पर बाण संधान करना निशाना लगाना और तेज गति से बाण को छोड़ देना सिखाया ।

एकलव्य ने सुमत जी को बताया कि युद्ध के प्रचलित सभी अस्त्र हाथ में लेकन युद्ध कियका जाता है जबकि एक मात्र धनुष ऐसा अस्त्र है जो शस्त्र की तरह योद्धा के पास रहता है और उसका एक अंश यानी कि बाण निकल कर लक्ष्य को हताहत कर डालता है । दूर से लड़ पाना केवल धनुषबाण से ही संभव है अन्यथा गदा, असि,भाला, सांग या कुछ भी हथियार हो इनका उपयोग बगल में रह कर लड़ने पर ही संभव है, इस कारण एकलव्य का आकर्षण धनुविद्या की ओर होता जा रहा है ।

उन्ही दिनों की बात है ! एकलव्य ने मूर्ति बनाने के काम से थक कर एकाएक धनुष उठाया और लक्ष्य साधकर एक छोटा सा बाण आसमान में उड़ते हुये कपोत के जोड़े में से एक पर छोड़ दिया और उसे बेध कर धरती पर गिरा दिया। यह देखकर प्रमुख शिल्पी ने उस घायल कपोत को उठाकर, अपने सीने से चिपका लिया। वे उसका उपचार करते हुये बोले, ''एकलव्य, निशाने की तो प्रशंसा करना पड़ेगी, लेकिन हमें आपका यह लक्ष्य बेध शोभनीय नहीं लगा।''

'' क्यों आचार्य ? मैं समझा नहीं''

'' दो कपोत वन विहार के लिये निकले थे। तुमने अनायास ही एक का वेधन क्यों कर दिया ?''

''उड़ते हुये पक्षी पर लक्ष्य संधान के उद्देश्य से।

''प्राणियों के अलावा तुम्हे लक्ष्यबेध का कोई दूसरा विकल्प नहीं सूझा ?''

''सूझा तो है आचार्य, पहले एक वाण के वेग को कम करके चला दें। दूसरे वाण से उसके पथ को अवरूद्ध करें।''

''अरे ! बहुत ही आश्चर्यजनक है तुम्हारी सोच। युवराज तुम एक कलाकार भी हो। कोई भी कलाकार निरूद्देश्य वन्य प्राणियों को वेध कर, किसी की हत्या नहीं करता।''

''तो क्या आचार्य दोनों पथ पृथक-पृथक हैं ?''

''युवराज दोनों की भावना का स्वर हृदय के एक ही स्थान से प्रस्फुटित होता है।''

''यह कैसे आचार्य, स्पश्ट करें ?''

''कलाकार हृदय की संवेदना को अपनी कला में प्रतिस्थापित करता है, तो किसी प्राणी की हत्या करते समय वही संवेदना कहां लुप्त हो जाती है ?''

''इसका अर्थ तो यह है आचार्य कि श्रेष्ठधनुर्धर श्रेष्ठकलाकार नहीं हो सकता।''

''युवराज, आपको एक सत्य बताऊं कि जो श्रेष्ठकलाकार नहीं होगा वह श्रेष्ठधनुर्धर भी नहीं हो सकेगा। श्रेष्ठधनुर्धर होने का अर्थ यह तो नहीं कि वह अपने बल वैभव में मदमस्त होकर भ्रमण करता रहे। वीर वही है जो उच्छृंखल नहीं है। वीर होकर उच्छृंखल हुआ तो उसकी वीरता सृजन के लिये नहीं हो सकती।''

''आचार्य, आप हस्तिनापुर के राजकुमार दुर्योधन की ओर हमारा ध्यान तो आकर्शित नहीं कर रहे हैं।''

''युवराज, हम किसी व्यक्ति विशेश की बात नहीं कर रहे हैं। हम करूणा और निर्दयता की गहरी तहों को छूने का प्रयास कर रहे हैं।''

''आचायर्, तब तो एक कलाकार को हिंसा का परित्याग कर देना चाहिये।''

''नहीं युवराज, मैं यह भी नहीं कर रहा हँ कि हिंसा का पूरी तरह परित्याग कर दो।''

''आचार्य, आप चाहते क्या हैं ?''

''युवराज, संवेदनश्शील कलाकार व्यर्थ की हिंसा में विश्वास नहीं रखते। हम हिंसा तब करें, जब हमारी भूख हिंसा के बिना शान्त न हो, उस समय हम हिंसा को अनिवार्य मान सकते हैं।''

''आचार्य, यह तो आप हिंसा का ही पक्ष ले रहे हैं।''

''हाँ युवराज, इसके अतिरिक्त यदि अपनी सुरक्षा की दृश्टि से हिंसा आवश्यक हो गई हो, तो वहां भीहिंसा अनिवार्य है। दूसरे की सुरक्षा में भी हिंसा की जा सकती है, लेकिन निरूद्देश्य हिंसा लक्ष्यहीन संधान है।उसका जीवन कोई औचित्य नहीं है।''

''बस-बस, मैं आपकी बात को अच्छी तरह से समझ गया। आज के बाद मेरे द्वारा व्यर्थ में हिंसा नहीं होगी। अब तो हिंसा तभी होगी जब वह मात्र हिंसा न हो, उसमें करूणा का भाव भी सन्निहित हो।''

''अब यह भी समझ लो युवराज कि जो वनवासी, वन्य प्राणियों की रक्षार्थ अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे वन्दनीय हैं।''

''आचार्य, मैं इसी पथ पर चलने का प्रयास करता रहूँगा।''

''युवराज इसी उद्देश्य को लेकर धनुर्विद्या का अभ्यास किया करें। निश्चय ही लक्ष्य तक पहुँच सकोगे। युवराज मैं तुममें श्रेष्ठधनुर्धर होने के सम्पूर्ण गुण देख रहा हू। मैं चाहता हूँ कि तुम सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बनो। अब मेरा जाने का समय आ गया है। कल मैं यहां से चला जाऊँगा।''

जब महाशिल्पी जाने लगे तो उन्होने एक बार फिर कहा था, ''एकलव्य तुममें मूर्तिकार की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठधनुर्धर होने की अनंत संभावनाए हैं।''

उसी दिन एकलव्य ने हृदय में निश्चय कर लिया कि एक दिन वह सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बनकर रहेगा और वह धनुर्विद्या के अभ्यास में लग गया।

इन्द्रन नदी के किनारे विशाल अश्वत्थ की छाया में शिवालय बना है। वह छोटे आकार का है, लेकिनउसके चबूतरे का आकार मंदिर की अपेक्षा विशाल है।प्रतिदिन एकलव्य के पुरम् के अधिकांश लोग प्रातः होने के पहले इन्द्रन नदी पर पहुच जाते थे। उसके पावन सलिल में स्नान करते। शिवलिंग पर जल चढ़ाने के उपरान्त अपने गृहस्थी के कार्यकलापों में व्यस्त हो जाते थे। इसलिए एकलव्य ने नदी-तट से हटकर घने जंगल के एक कोने में अभ्यास के लिये स्थान निहित कर लिया। निषादपुरम के अधिकांश किशोर अपने-अपने धनुश बाण लिये वहां उपस्थित हो जाते और अभ्यास करने लगते।

निषादराज देख रहे थे कि बच्चों में खूब उत्साह है ।

इस तरह खेल-खेल में धनुर्विद्या का अभ्यास करते करते उन किशोरों को कइ्र दिवस व्यतीत हो चले। ज्यों ज्योंअभ्यास की अवधि बढती जा रही थी, त्यों-त्यों हिरण्यधनु को किसी श्रेष्ठप्रशिक्षक आचार्य का अभाव खटकने लगा था। प्रमुख शिल्पी ने कहा था, ''इस युग के युद्ध की सब विधाओं के सर्वश्रेष्ठआचार्य अवन्तिका नगरी के सान्दीपनी जी हैं। मधुपुरी के वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण जी उसी आश्रम मे रहकर समस्त प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।''

निषादराज सोचते, सान्दीपनी आश्रम तो अनेक विद्याओं और कलाओं, का केन्द्र गुरूकुल है, लेकिन हमतो निषाद भील है, हमे एकलव्य को अन्य कलाओं को सिखाकर क्या करना है ? उसे तो केवल धनुर्विद्या में ही पारंगत कराना है। धनुर्विद्या के क्षेत्र में हिरण्यधनु को महर्षि परशुराम की याद आती है। उन्ही के शिश्य तो आचार्य द्रोण हैं। आज उनके समान धनुर्विद्या में कोईदूसरा नहीं है। कौरव और पाण्डव ही उनसे धनुर्विद्या का शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। क्या यह सम्भव है कि एकलव्य को आचार्य द्रोण जैसा गुरू प्राप्त हो सके।''

अचानक उन्हें प्रमुख शिल्पी का यह कथन याद हो आया, ''कौरव और पाण्डव का वंशक्रम निषादकन्या मत्स्यगंधा और पाराशर ऋषिकी संतान हैं। कहाजाता है कि एक बार पाराशर ऋषिभ्रमण के लिये निकले। उन्होंने नावसे गंगा पार करना चाही। नाव खेने का कार्य रूपवती मत्स्यगंधा कर रही थी। वे उसके रूप पर मुग्ध हो गये, और उसके साथ भोग विलास किया फिर कुमारी अवस्था में पाराशर ऋषिसे कृष्ण द्वैपायन जैसे लोक विख्यात ऋषिको जन्म देकर भी वे मत्स्यगंधा नामक निषाद युवती ही राजा शान्तनुसे विवाह कर सत्यवती

के रूप मे कुलवधु हो गई। इस दृष्टि से देखे तो हम निषादवंशी कौरव और पाण्डवों से किसी प्रकार कम नहीं हैं।''

उस दिन वे इस तरह के चिन्तन में थे कि अचानक ही वहां मंत्री चक्रधर और एकलव्य का आगमन हुआ। चक्रधर ने निषादराज की मुखाकृति के भाव पढ़ते हुये कहा, ''देव, चिन्तित दिखाई दे रहे हैं।''

एकलव्य के प्रशिक्षण के बारे में अपनी चिन्ता से हिरण्यधनु ने मंत्री को अवगत कराया -''मैं अभी अपने एकलव्य को धनुर्विद्या सिखानेके लिये पर्याप्त हूँ लेकिन पिता पिता होता है और आचार्य-आचार्य। पिता आचार्य नहीं बन सकता। मैं वैसा धनुर्धारी भी नही हूँ । अन्यराजकुलों की तरह हमें भी अपने वत्स के लिये किसी श्रेष्ठगुरू की खोज करनी चाहिये जो हमारे निषादपुरम में

रहकर अकेले एकलव्य को ही नहीं बल्कि संपूर्ण निषादपुरम के युवकों को धनुर्विद्या सिखा सके।''

उनके इस मन्तव्य के समर्थन में मंत्री चक्रधर ने अपना विचार व्यक्त किया, ''कौरव पाण्डव की तरह हमारे पास उतने संसाधन नहीं हैं। हमारी आय का मुख्य साधन तो हस्तिनापुर और पांचाल के मध्य होने वाले व्यापार वस्तुओं का परिवहन करना था लेकिन जब से आचार्य द्रोण हस्तिनापुर पहुॅचे हैं, तब से हस्तिनापुर और पांचाल के बीच होने वाले व्यापार में बहुत कमी आई है। दोनों राज्य एक दूसरे के प्रति शत्रुता का भाव रखने लगे हैं। इन दोनों राज्यों के सम्बन्धों पर ही निषादपुरम का भविश्य निर्भर है। ऐसी स्थिति में किसी आचार्य की व्यवस्था करना सम्भव नहीं है।''

वे दोनों देर तक राजनीति की बात करते रहे ।

एकलव्य ने विनम्रता पूर्वक अपना विचार व्यक्त किया, ''गुरूदेव से अध्ययन करने के लिये उनके आश्रम में ही जाना पड़ेगा। श्रीकृष्ण समर्थ हैं फिर भी उन्हे शिक्षा ग्रहण करने के लिये उनके आश्रम में ही जाना पड़ा है।''

मंत्री चक्रधर ने एकलव्य का मंतव्य समझते हुये उत्तर दिया, ''युवराज, इन दिनों राजकुलों में आचार्य को रखने की जिस परम्परा ने जन्म लिया है, उसके अनुसार हमें भी आचार्य द्रोण की तरह किसी आचार्य की खोज करनीपड़ेगी, जो निषादपुरम में रहकर हमारे पुरम के सभी युवकों को विद्याओं में पारंगत कर सके।''

निषादराज नें अपने दृश्टिकोण से उन दोनों को अवगत कराया, ''मैं अनुभव कर रहा हूॅ आचार्य द्रोण से श्रेष्ठआचार्य कहीं कोई दिखाई नहीं देता। अकेली युद्ध कला ही नहीं उनकी पूरी शिक्षण पद्धति व्यावहारिक अधिक लग रही है। उनमें आजके परिवेश से जूझने की सामर्थ्य अधिक है। गुरूदेव सान्दीपनि अपने शिश्यों को दर्शन पढ़ा रहे हैं। अरे ! दर्शनसे किसी का पेट भरने वाला नहीं है।''

मंत्री चक्रधर ने उनकी बात के समर्थन में कहा, ''हमें तो अपने राज्य के अस्तित्व को बचाए रखने के लिये एक शक्तिशाली सेना की आवश्यकता है। इसलिए जरूरी है कि हमारे युवक दुर्धर्ष योद्धाओं के रूप में तैयार हों ।''

अपने राज्य की परिस्थिति का अनुभव करते हुये एकलव्य ने कहा, ''पिताश्री, यदि मैं धनुर्विद्या में पारंगत हो सका तो निषादपुरम के युवकों को शिक्षित करने के कार्य में मैं स्वयं लग जाऊॅगा।''

एकलव्य की यह बात सुनकर निषादराज को अपने पूर्व से चलते सोच पर विश्वास हो गया कि एकलव्य की उचित व्यवस्था कर देनेसे ही निषादपुरम की सुरक्षा की समस्या का समाधान हो सकेगा। यह सोचकर बोले, ''मंत्री चक्रधर आप इस सम्बन्ध में कोई उचित मार्ग खोज निकालें और हमें सूचित करें जिससे हम अपने दायित्व का निर्वाह कर सकें।''

यह सुनकर मंत्री चक्रधर ने कहा, ''जैसी निषादराज की आज्ञा। मैं शीघ्र ही समाधान खोजकर देव के समक्ष प्रस्तुत करूॅगा।''

यह कहकर मंत्री चक्रधर कक्ष से बाहर निकल गये।

00000

एक दिन परमहंस मनीशी बाबा का आगमन इन्द्रन के तट से निषादपुरम में हुआ। नाव से उतरकर अनायास वे शिवालय की ओर चले। वहॉ पहुंचकर वे अश्वत्थ की छाया मे बने शिवालय के चबूतरे पर जाकरबैठ गये। इन्द्रन नदी की ओर से प्रवाहित शीतल वायु उनका स्वागत करने लगी।

परमहंस बाबा के चेहरे से उमड़े पड़ रहे तेज और आभामण्डल को जो देखता, वही आकर्शित हो जाता। कुछ लोग उन्हें देखकर इनके पास आकर बैठ गये।कुछ परमहंस जी के खाने पीने के लिये कंद मूल और फल ले आये और कुछ जल पात्र में जल ले आये।

परमहंस जी उन कंद मूल और फलों को उपस्थित जनों में बांटने लगे। लोग प्रसाद के रूप् में अपनी ही कवस्तु ग्रहण करने लगे ।

कुछ के मन में उनसे अपना भविश्य जानने की इच्छा से प्रश्न उमड़ने लगे। एक ने प्रश्न किया, ''परमहंस जी आज मैं चौसर के खेल में जीतूंगा या नहीं।''

उसकी यह बात सुनकर वे अपनी खड़ी बोली में बोले ''रे तू न कबहूँ जीतो है, न जीतैगो।''

इसी एक उत्तर ने ही सभी के कान खोल दिये। क्योंकि परमहंस जी भले न हों पर वहां उपस्थित जन तो उस व्यक्ति की स्थिति से अवगत थे ही। वे अनुभव कर रहे थे- यह प्रतिदिन चौसर खेलता है लेकिन आज तक कभी नहीं जीत पाया है।चौसर ने इसका घर परिवार ही नश्ट कर दिया है। फिर भी इसका वही चाल चलन है।

इस एक उत्तर ने सब के मन का विश्वास जीत लिया। निषादपुरम के सेठ अनन्तराम सोचने लगे,''परमहंस जी के उत्तर के अनुसार यह कभी चौसर में न विजयी हुआ है न होगा।''

लोहकर्मी रामबली ने सोचा, ''इसे तो हमेशा हमेशा के लिये चौसर खेलना ही छोड़ देना चाहिये।''

अब तक दूसरा व्यक्ति अपने अन्दर की व्यथा को छिपाकर न रख सका। उसने भी प्रश्न किया,''परमहंस जी आज मेरे लड़के को अर्धरात्रि के बाद उल्टी हो रही है, उसे ताप चढी है। उसे क्या ओषधि देना चाहिए !''

परमहंस जी ने उसे अपने पास से एक औशधि देते हुये कहा, ''जा उसे इसे पीस कर खिला दे।''

वह औशधि लेकर घर चला गया।

जब जब निषादपुरम में परमहंस जी का आगमन होता है, तब तब लोग इसी प्रकार की उलझनों और अपने प्रश्नों को लेकरउनके पास आने लगते हैं। आज भी यह सिलसिला देर तक चला ।

तब अंधेरा घिर रहा था जबकि सायंकालीन अभ्यास से निवृत्त होकर एकलव्य परमहंस जी के पास आया । उसने साष्टांग प्रणाम कर उनसे निवेदन किया, ''परमहंस जी राजप्रासाद में चलें।''

एकलव्य की बात सुनकर बच्चों की तरह सरल हृदय वाले परमहंस जी तत्काल उठे ओर एकलव्य के साथ चल पड़े । कुछ वृद्धजन भी परमहंस जी के पीछे पीछे राजप्रासाद के लिये चल दिये।

निषादपुरम में अधिकांश घर मिट्टी के बने थे। कुछ घरों पर छान डली थी। कुछ की छान पर बेलेंसुशोभित थीं। कुछ घर नदी के पत्थरों का उपयोग कर बनाये गये थे। निषादपुरम के मध्यपथ से चलते हुयेसभी राजप्रासाद की ओर चले जा रहे थे।

मिट्टी के ऊॅचे टीले पर दिख रहा था राजप्रासाद। थोड़ी सी चढ़ाई चढ़ने के बाद दिखने लगा विशाल दरवाजा, जो पत्थरों को सुसज्जित कर बनाया गया था। उन्हीं पत्थरों से बना था राजप्रासाद का परकोटा। राजप्रासाद के सामने था विशाल अशोक का वृक्ष, जो इसकी शोभा में वृद्धि कर रहा था। निषादराज से मिलने आने वाले, प्रतीक्षा के समय इसी वृक्ष कीछाया का आश्रय ग्रहण करते हैं। राजप्रासाद के आसपास पहाड़ी की तलहटी तक घने वृक्षों की शोभा, भीलराज

के वनप्रेम और वन रक्षा में सफलता के गौरव की कहानी कह रही है।

परमहंस जी के साथ युवराज एकलव्य को देखकर पहरेदार को अन्दर निषादराज के पास सूचना भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ी।वे राजप्रासाद के विशाल कक्ष में पहुंॅच गये। निषादराज ने आगे बढ़कर परमहंस जी

की अगवानी की। परमहंस जी को पास के सिंहासन पर बैठाया। निषादराज सिंहासन पर विराजमान हो गये। कुछ लोग परमहंसजी की चरणसेवा करने लगे। राजसेवक ने उन्हें गौदुग्ध प्रस्तुत किया। जिसे वे बिना ना नुकुर की पी गये ।

हिरण्यधनु आज कम बोल रहे थे । वे बस परमहंस जी को देखे जा रहे थे ।

परमहंस जी अनुभवी हैं। वे बिना प्श्न सुने ही जान गये कि निषादराज की उलझन क्या है ? उन्होंने स्वयं ही पूछ लिया, ''राजन, आचार्य की खोज चल रही है।''

हिरण्यधनु समझ गये कि परमहंस जी को हमारी समस्या का आभास हो गया है। इसलिये उन्होंने उत्तर दिया, ''जी गुरूदेव।''

यह उत्तर सुनकर परमहंस जी विचार मग्न बैठ गये मानों समाधिस्थ हो गये हों । सभी उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। उत्तर की प्रतीक्षा करते आधी घड़ी व्यतीत हो गई तो हिरण्यधनु ने प्रश्न किया, ''गुरूदेव एकलव्य के लिये धनुर्विद्या सिखलाने वाले आचार्य की खोज कर रहे हैं। अभी इस कार्य में सफलता नहीं मिल पाई है।''

उनकी यह बात सुनकर परमहंस जी ने उत्तर दिया, ''एकलव्य के गुरू बनने लायक तो द्रोणाचार्य ही हैं। उनके पास ही जाना पड़ेगा।''

परमहंस जी के इस कथन से लोगों को आश्चर्य हो रहा था। कुछ वृद्ध सोच रहे थे, ''वे तो क्षत्रिय राजकुमारों के आचार्य हैं। क्या वे भील पुत्र एकलव्य को शिष्य रूप स्वीकार करेंगे ?''

मंत्री चक्रधर सोच रहे थे, 'अब आचार्य की खोज में भटकने की आवश्यकता नहीं है। निश्चित हीसमस्या का समाधान प्राप्त हो गया है।''

हिरण्यधनु परमहंस जी की बातों को अक्षरशः ग्रहण कर रहे थे। उन्हें विश्वास हो गया, ''आचार्य द्रोण इसे अपना शिश्य स्वीकार कर लेंगे।''

अब परमहंस जी वहां से उठे। हिरण्यधनु ने उन्हें रोंकने का प्रयास किया। परमहंस जी कुछ उत्तर दिये बिना ही वहां से चले गये। निषादपुरम के जो वृद्ध उनके साथ आये थे वे भी उनके पीछे-पीछे चले गये।

उनके जाने के बाद हिरण्यधनु को लगा कि परमहंस जी हमें परामर्श देने के लिये ही अचानक आज यहॉ आये थे।

यही सोचते हुये वे एकलव्य को आचार्य द्रोण के पास भेजने की योजना बनाने लगे।

000000

जीवन मे जब जब प्रौढ़ता यानी कि मृत्यु की निकटता अनुभव होती है, तब तब मानव के चित्त पर पूर्व के कृत्यों की झांकी भाशित होने लगती है। वही झांकी दुःख से निवृत होने के बाद भी कुछ समय तक चित्त में अपना स्थान बनाये रखती हैं।

आचार्य द्रोण प्रतिदिन की तरह चिन्तन में डुबे हुये गंगा स्नान के लिये निकले। उस समय सभी राजकुमार नित्य की तरह उनके साथ थे। ध्यानमग्न आचार्य स्नान करने के लिये कुछ अधिक गहरे जल में प्रवेश कर गये। वे चौंके और उनने अनुभव किया कि अचानक ही उनकी जांघ किसी ग्राह ने पकड़ ली है। शुरू शुरू में तो उन्होंने पूरी ताकत लगाकर ग्राह से छूटनेका प्रयास किया किन्तु वे उसमे असफल रहे। ग्राह उन्हंे खींचकर और गहरे पानी में ले जाने लगा। वे आर्त स्वर

में लगभग रोते हुऐ से चिल्लाये, ''ग्राह से मुझे बचाओ SS, मुझे बचाओ SSSS।''

उनके वेदना भरे स्वर को सुनकर किनारे पर खड़े सभी राजकुमार किंकर्तव्यविमूढ से हो यहां वहां ताकने लगे। अर्जुन जल से उठते रक्त को देख क्षण भर में यर्थार्थ समझ गया। उसने तत्परता से अपना धनुष संभाला और आनन ॅफानन में, ठीक नदी के बीच पहुंच कर पांच पैने बाण से पानी में छिपे ग्राह को बेध दिया। बाणों के तेज घाव से तुरंत ही उस विशाल ग्राह का प्राणान्त हो गया।

द्रोणाचार्य संकट से मुक्त हो गये। उन्हें गंगा से बाहर निकाला गया। उनकी जांघ से रक्त का स्राव हो रहा था। राजकुमारों ने इशारा किया तो पीछे खड़ें सेवकों के कंधो पर लाद कर तत्काल ही आचार्य को राजवैद्य के पास ले जाया गया। राजवैद्य ने उपचार आरंभ किया।

कुछ पल बीतने के उपरान्त की बात है ।

उस क्षण आचार्य अपने आप को स्वस्थ अनुभव कर रहे थे।

प्रसन्न द्रोणाचार्य ने समस्त राजकुमारों की उपस्थिति में कहा, ''वत्स अर्जुन उस दिन तुमने सचमुच मेरी प्राणरक्षा की । तु3म पर अतिप्रसन्न होने के कारण आज मैं तुम्हे ब्रह्मसिर नामक दिव्य अस्त्र का प्रयोग सिखाऊँगा। यह अमोघ अस्त्र है, इसे कभी किसी साधारण मनुश्य पर प्रयोग न करना। यह सारे जगत को नश्ट करने शक्ति रखता है।''

अर्जुन इस समय उनके समक्ष विनीत भाव से हाथ जोड़े खड़ा था। उनकी यह बात सुनकर वह बोला,''गुरूदेव की आज्ञा शिरोधार्य है।''

फिर वे प्रसन्नता की मुद्रा में अर्जुन से बोले, '' अर्जुन, तब पृथ्वी पर तुम्हारे समान कोई वीर धनुर्धर नहींहोगा।''

अर्जुन ने नम्रता से अपना शीश गुरूदेव के समक्ष झुका लिया। ध्रतराष्ट्र के पुत्र कौरव इस आशीर्वाद को सुनकर जल-भुन गये। लेकिन वे सब उस समय विवश थे क्योंकि संकट के समय केवल अर्जुन ने गुरूदेव के प्राण बचाये हैं। इसलिए उसके दूसरे भाई भी कौरवों के समानदूर खड़े थे ।

उपचार के उपरांत वापस जाते जाते राजवैद्य कह गये, ''इस समय आचार्य को विश्राम की आवश्यकता है। इन्हंे बिना बाधा पहुंचाये आराम करने दिया जाये।''

यह सुन कर सारे शिष्य गुरू को प्रणाम करके राजमहल के लिए चल पड़े ।

द्रोणाचार्य अपने अंगों में पीड़ा का अनुभव करते हुये शयन कक्ष में छत की ओर निहारने लगे। उन्हें याद आ रहे थे वे दिन, जब भारद्वाज ऋषिके आश्रम में वे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उन्हीं दिनों पांचाल नरेश का पुत्रद्रुपद भी वहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिये आया। दोनों में गहरी मित्रता हो गइ थीं। दोनों गुरू का दिया हर

प्रसाद आधा बांट कर खाते । हर आदेश मिल कर पूरा करते । गुरू यउनकी कमित्रता से प्रसन्न थे । वे दोनों प्रायः यही संकल्प करते िकवे आजीवन साथ साथ रहेंगे । बातों बातों में एक दिन द्रुपदने कहा, '' अब की तरह हम दोनों जीवन में हर वस्तु बांट कर ग्रहण करें गे । मेरे राजा बनने पर आधा राज्य तुम्हारा का होगा।''

निर्धन द्रोण को लगा कि कदाचित यह बात संभव हो जाये तो कितना अच्दा हो !

द्रोण बुदबुदा रहे थे.....अध्ययन समाप्त होने के बाद द्रुपद पांचाल देश का राजा हो गया। भारद्वाज ऋषिब्रह्मलीन हो गये। मैं वहीं रह कर तप करने लगा। शरद्वान की पुत्री कृपी से मेरा विवाह हो गया। वे बड़ी धर्मशील हैं। उसके गर्भ से अश्वत्थामा का जन्म हो गया।

उसके बाद मैं भृगुनन्दन परशुराम जी से अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण करने चला गया। परशुराम जीसे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। घर आकर देखा, मेरा परिवार अभावों में अपना समय व्यतीत कर रहा है। नन्हा अश्वत्थामा दूध के लिये वंचित है। मुझसे यह सब देखा न गया। मुझे याद हो आई द्रुपद के वचनों की। मैंने अभावों से मुक्ति पानी चाही और द्रुपद से मिलने पांचाल पहुँच गया।

उसकी राजसभा में द्रुपद से मैने अपनी बात कही, ''राजन मैं आपका प्रिय सखा द्रोण हूॅ। आपने मुझे पहचान तो लिया।''

मेरा यह प्रश्न सुनकर द्रुपद चिड़ गया और कहने लगा, ''ब्राह्मण तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुईहै। अरे ! तुम्हे मुझे अपना मित्र कहने में जरा भी संकोच नहीं लगा। किसी राजा की निर्धन व्यक्ति से कैसीमित्रता ? अरे समय व्यतीत हो जाने पर पुरानी बातें तो स्वतः ही मिट जाती हैं।''

द्रुपद ने और भी अनेक बातें मुझ से कहीं लेकिन मुझे क्रोध आ गया। उसी दिन मन ही मन मैंने यह निश्चय कर लिया, ''इसे इसकी सीख जरूर सिखाकर रहूॅगा।''

यही सोचकर मैं हस्तिनापुर के लिये चल दिया.....।

इसी समय उन्होंने करवटबदली। अंग प्रतिअंग में पीड़ा हो रही थी। याद आया.....सोचने लगे.....आज अर्जुन ने उनकी रक्षा न कीहोती तो द्रुपद से शत्रुता का भाव जीवन के अंत के साथ ही समाप्त हो गया होता। याद आ रही है, उस समयकी जब मैं हस्तिनापुर के बाहर पहुंॅचा। उस समय युधिश्ठिर आदि सभी राजकुमार गेंद खेल रहे थे। मेरे देखते-देखते गंेद संयोग से कुएॅ में जा गिरी। राजकुमारों ने गेंद को कुएॅ से निकालने के खूब प्रयत्न किये, लेकिन वे सभी असफल रहे। निराश राजकुमार एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे। इसी देखा देखी में उनकी दृश्टि मेरी दृश्टि से टकराई। सभी राजकुमार गंेद के प्रसंग को छोंड़कर मेरे पास आ गये। मुझे घेरकर खड़े हो गये। मैं समझ गया,ये लोग गेंद निकालने में असफल रहे हैं।

मैंने उन्हंे अपनी ओर आकर्शित करने के लिये बच्चे समझते हुये भी धिक्कारा, ''अरे ! कैसा है तुम्हारा क्षत्रिय बल और अस्त्र कौशल ?तुम लोग कुएॅ से एक गेंद भी नहीं निकाल सके। देखो मैं तुम लोगों की गेंद और अपनी यह अंगूठी अभीअभी कुएॅ से निकाल देता हूॅ।''

यह कहकर मैने अपनी अंगूठी कुएॅ मे फेंक दी।

मैंने मुट्ठीभर सींकें लीं। धनुश पर चढ़ाकर सीकों के बाणों से, पानी के उछाल के साथ, गेंद को कुएॅ से बाहर निकाला। यह देखकर राजकुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले, ''महोदय, आप अपनी अंगूठी तोनिकाल लीजिये।''

मैंने बाण चलाकर अंगूठी को भी बाहर निकाल लिया। यह आश्चर्य जनक करतब देखकर राजकुमार कहने लगे,''आप अपना परिचय तो दीजिये। हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ?''

उनका यह प्रश्न सुनकर मैंने कह दिया, ''तुम लोग मेरा यही परिचय भीश्म जी को दे देना। वे मेरे बारे मेंसब कुछ जान जायेंगे।''

मेरी यह बात सुनकर राजकुमार चले गये। उन्होंने भीश्म से कहा होगा। वे समझ गये होंगेकि धनुर्विद्याा में शोधरत मैं आ गयाहूॅ। यह सोचकर उन्होंने मुझे बुलवा लिया।

राजकुमारों को शिक्षा देने के लिये, वे मुझसे आत्मीय निवेदन करने लगे। मेरा बड़ा भारी स्वागत सत्कारकिया गया। उन्हांेने मुझसे हस्तिनापुर आने का कारण पूछा तो मैंने अपनी सारी अर्न्तवेदना भीश्म जी के समक्षउड़ेल दी, ''पांचाल देश के राजा द्रुपद ने अध्ययन के समय मुझे बचन दिया था कि जब मैं राजा बन जाऊँगा तबआप मेरे साथ ही निवास करना।मेरा विवाह कृपी से हो गया। मेरे एक सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र है, जिसका नाम अश्वत्थामा है। एक दिन की बात है गौ दोहन के पश्चात अन्य ऋषिकुमार दूध पी रहे थे। अश्वत्थामा उन्हंे दूध पीता देखकर दूध केलिये मचलने लगा। घर में दूध न था। कृपी ने आटा घोलकर दूध के रूप में उसे पीने को दे दिया। वह नादान खुशी-खुशी उस बनावटी दूध को पी गया। दूध पीने की प्रसन्नता के कारण वह नाचने लगा। यह देखकर तो मेरा धैर्य ही टूट गया।

जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा परम प्रिय मित्र द्रुपद अब पांचाल जैसे राज्य का राजा बन गया है। मैं सहज में ही उसके यहां पहुंचा।मैं उससे मित्र के रूप में परिचय देता हुआ मिला। उसने मुझे सेवक के रूप में स्वीकारना चाहा। उसने अपने राजा होने का अहंकारी भावव्यक्त करते हुये कहा, ''धनी व्यक्ति की निर्धन के साथ कैसी मित्रता ? तुम कहते हो मैंने तुम्हंे उस समय अपनेराज्य में से आधा राज्य देने की बात कही थी। मैं उस बात को पूरी तरह भूल गया हँू।''

बस तब से भीश्म जी, मैं द्रुपद से शत्रुता का भाव रखने लगा हँू। उसने मेरा अपमान किया है। उसे पराजित करने की प्रतिज्ञा तो शीघ्र ही पूर्ण करूँगा लेकिन अभी गुणवान शिश्यों की खोज में यहाँ आया हँू।

मेरी यह बात सुनकर भीश्म जी ने कहा, ''आचार्य आप अपने धनुश की डोरी उतार लीजिये। आप हमारे इन राजकुमारों को धनुर्विद्या और अस्त्रों की शिक्षा दीजिये। हम सब आपकी सेवा में रहेंगे।''

उसी दिन मैं समझ गया, ''मेरे अन्दर द्रुपद से प्रतिशोध लेने की जो अग्नि प्रज्जवलित हो रही है, उसे यहीं ष्शान्त किया जा सकता है। यहॉ रहकर ही मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर पाऊॅगा।''

यही सोचकर मैंने राजकुमारों को शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया।

एक दिन मैं अपने अंतर मन में पल रही प्रतिशोध की भावना को दबाकर नहीं रख सका। अपने शिश्योंसे पूछ बैठा, ''अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात तुम लोग मेरी इच्छा की पूर्ति कर सकोगे ?''

सब राजकुमार मेरी बात सुनकर चुप रह गये, क्योंकि वे मेरी इच्छा और द्रुपद की शक्ति से पूर्ण रूप से परिचित थे। उसदिन अर्जुन ने बड़े उत्साह के साथ उत्तर दिया, ''मैं आचार्य की इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।''

उस दिन मैं आनंदविभोर हो गया। अपने इस प्रिय शिश्य को छाती से लगा लिया।

उस दिन मुझे विश्वास हो गया कि मेरे प्रतिशोध को यही अर्जुन चुकता कर पाएगा। यही सोचकर उसदिन से मैंने उसे कुछ गोपनीय अस्त्र-शस्त्र देना प्रारंभ कर दिये।

उस समय मेरे शिश्यों में अनेक दूसरे राजकुमार भी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। मैं शिक्षा देने में किसी से कोई भेद भाव नहीं रखता। अश्वत्थामा तथा अर्जुन दोनांे ही चतुर थे। उनकी चतुरता शीघ्र ही प्रमाणिक हो गयी क्योंकि मैं हर सुबह आश्रम के लिये जल लेने शिश्यों को भेजता। अश्वत्थामा ने अपनी चालाकी से बडे मुंह का पात्र ले लिया। अर्जुन उसकी यह चाल देखकर सब कुछ समझ गया। अर्जुन ने भी वैसा ही पात्र जल लाने के लिये ले लिया। परिणाम यह हुआ िकवे दोनों ही अन्य शिश्यों की अपेक्षा शीघ्र जल भरकर लौट आते और मझसे पाठ शुरू करने का आग्रह करते। इस तरह दोनांे अन्य शिष्यों की अपेक्षा अधिक पारंगत होते चले गये।

.....आज नींद नहीं आ रही है। याद आ रही है उस दिन की, जब रात्रि के गहरे अंधकार में अर्जुन कीप्रत्यंचा की टंकार सुनकर मैं उस ओर चला गया। अंधेरे में मैं क्या देखता हूॅ, अर्जुन इस गहरे अंधकार में, बाणचलाने का अभ्यास बड़ी तल्लीनता से कर रहा है। यह देखकर मैं आनन्द विभोर हो गया। मुझे अपना लक्ष्य बहुत ही निकट दिखाई देने लगा। मैंने उस दिन भी अर्जुन को अपनी छाती से चिपका लिया। उसे आशीर्वाद दिया।

उस दिन यह आशीर्वाद मेरे मुंह में आकर अंटक गया था, ''बेटा अर्जुन मैं ऐसा प्रयत्न करूॅगा कि तुम्हारे समान कोई धनुर्धर न हो।''

आज जब उसने मेरे प्राण बचाये हैं, यह बात उससे कह गया हूँ कि तुम्हारे समान कोई धनुर्धर न होगा।यह मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ। मैंने अनुभव किया है कि मेरी यह बात सुनकर कौरव राजकुमारों के मुख निस्तेज हो गये। हृदय में सुसुप्त पड़ा भाव आज अनायास ही वरदान के रूप में निस्सृत हो गया है। इसे पूर्णकरने के लिये मैं अपना तन मन एक कर दूँगा। जो हो अर्जुन श्रेष्ठधनुर्धर बनकर ही रहेगा।

अचानक धारणा ध्यान से निवृत्त होकर कृपी ने कक्ष में प्रवेश किया। उन्होंने अनुभव किया स्वामी अभी जाग रहे हैं। उसने प्रश्न किया, ''स्वामी आज किस विशय में सोच रहे हैं।''

मैंने उत्तर दिया, ''देवी कृपी आज अर्जुन के कारण ही मेरे प्राण बच पाये हैं। मैंने अनुभव किया है जब अर्जुन पानी में डूबे ग्राह को इतनी सफलता पूर्वक मार सकता है तो साक्षात व्यक्तियों और लक्ष्यों को तो वह अंधेरे में भी बेध देगा। निश्चय ही उससे श्रेष्ठधनुर्धर कोई नहीं हो सकता।इसी कारण उसके लिये सर्वश्रेष्ठधनुर्धर होने का आशीर्वाद निकल गया। प्राण बचाने के उपलक्ष में उसे कुछ तोदेना ही था।''

मेरी यह बात सुनकर देवी कृपी गंभीर होते हुये बोली, ''स्वामी आपको यह कहावत स्मरण में होगी, कि खोजने निकलें तो संसार गहरा होता जाता है। आपने अर्जुन को सर्वश्रेष्ठधनुर्धर होने का आशीर्वाद कैसे प्रदानकर दिया। कल कोई उससे श्रेष्ठधनुर्धर निकल आया तो क्या आप मिथ्याभाशी नहीं हो जायेंगे ?''

उसकी यह बात सुनकर मैंने सफाई देते हुये कहा, ''ग्राह को मारते समय सभी राजकुमार देखते रहगये। उसमें अकेला अर्जुन सफल हुआ। देखना देवी कृपी मेरे शिश्यों में अर्जुन से श्रेष्ठकोई धनुर्धर नहीं होगा। मुझे इस घटना से सभी शिश्यों के अन्तस् में झांकने का अवसर तो मिल ही गया। मैंने सभी को अच्छी तरह समझ लिया। इस जगती में जो जो लोग धनुर्धर होने के यतन में है, वे सब मेरी निगाह में है, उनमें से कोई अर्जुन जैसा लगनशील नहीक है । इसीलिये मेरी बात कभी अन्यथा नहीं जा सकती।''

उत्तर सुनकर कृपी ने धीमे स्वर में कहा- संसार का सर्वश्रेष्ठअथवा शिश्यों में सर्वश्रेश्ठ। कहीं न कहीं तो समझने में चूक हो ही गई है। अधिक भावुकता में भूल होना स्वाभाविक है। स्वामी, आप तो भगवान परशुराम जी के शिश्य हैं। आपने बहुत सोच विचार करने के प्श्चात ही अर्जुन को सर्वश्रेष्ठधनुर्धर होने का आशीर्वाद दिया होगा।

एक कपल रूक कर कृपी बोली-अश्वत्थामा भी तो किसी से कम नहीं है। उसे ही यह आाीर्वाद प्रदान कर देते। अर्जुन से इतना मोह, उसकी सेवा भावना के कारण ही उत्पन्न हुआ है। आज उसने स्वामी आपके जीवन की रक्षा की है। इस निमित्त अर्जुन को कुछ न कुछ तो देना ही था। मुझे अर्जुन की तुलना में वत्स अश्वत्थामा कम नहीं लगता। उसमें कमी है तो यह कि उसके पिताश्री स्वयं उस पर ध्यान नही दे रहे हैं। क्या सभी आचार्य ऐसे ही होते हैं ? अपने बच्चों

पर उतना ध्यान नहीं देते, जितना अन्य शिश्यों पर देते हैं। यदि ये लोग अपने बच्चों पर भी उतना ही ध्यान देनेलगें तो इन आचार्यों की वंश बेल ही परिवर्तित हो जायेगी।आप लोगों को यह बात समझ में क्यों नहीं आती ?

मैंने अनुभव किया कि यकायक कृपी के मन में बैठी मॉ ने सोचना शुरू किया है-लेकिन अर्जुन की कलगन चाहे कुछ भी हो मुझे तो अपने अश्वत्थामा का सोचहै। कैसे वह संसार में अपना स्थान बना पाता है ? स्वामी आपसे इस बारे में क्या कुछ नहीं कह चुकी, पर आप सुनते ही नहीं हैं। आपको तो अर्जुन ही अर्जुन दिखाई देता है। पांचाल नरेश से शत्रुता का कोई औचित्य ही मेरी समझ में नहीं आता। वह अपनी बात पर स्थिर नहीं रहा, तो इससे उसी का सम्मान कम हुआ है यह बात स्वामी से कौन कहे ? यदि कुछ कहती हूँ तो कह देते हो, ''देवी कृपी तुम इन रहस्यों को नहीं समझती।''

कृपी फिर बोली -मैं भी कैसी हूँ जो स्वामी के बारे मे क्या क्या सोचने मे लगी हूँ। उधर स्वामी सोच में हैं, इधर मैं। अब शायद स्वामी सो गये। मैं भी सोने का प्रयास करूँ। यह कहकर देवी कृपी आँख बन्द करके अपनी शैया पर जा लेटीं।

3

जीवन में जब कोई नया कार्य आरम्भ किया जाए उसके बारे में समस्त योजनाएँ पूर्व में ही बना ली जावें।आज यही सोचकर निषादराज हिरण्यधनु और उनकी पत्नी सलिला युवराज एकलव्य को गुरूदेव द्रोणाचार्य के पास भेजने की तैयारी करने लगे। हिरण्यधनु ने उसे स्वर्ण मुद्रायें दी और संभलाकर रखने को कहा वे उसे यात्रा के निर्देश दे रहेंथे। यकायक वे बोले ''मैं स्वयं आचार्य द्रोण के समक्ष उपस्थित होकर निवेदन करना चाहता

था, लेकिन इन दिनों दस्युओं का आतंक अत्यधिक बढ़ गया है, इसी कारण मैं अपने पुरम को नहीं छोड़ पा रहा हूँ। मैंनें अपने विश्वसनीय गुप्तचर पुश्पक को तुम्हारे साथ जाने का आदेश दे दिया है। मैं जानता हूँ पुश्पक इतना प्रवीण है कि उसमें यथा समय उचित निर्णय लेने की क्षमता है।''

उधर नगर भर में यह हवा तीव्र गति से प्रवाहित हो गई। सभी को ज्ञात हो गया था कि प्रातः ही हमारे युवराज शिक्षा ग्रहण करने के लिये आचार्य द्रोण के पास हस्तिनापुर जा रहे हैं। युवराज के साथी युवक जोउसके साथ धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे थे, इस कारण वे सभी प्रातः होते ही राजप्रासाद में उपस्थित हो गये थे। जब युवराज उस बड़े कक्ष में आकर उपस्थित हुये उस समय उनके कंधे पर सुन्दर तूणीर था, दूसरे कंधे पर सुसज्जित धनुश। कमर के नीचे श्वेत धोती शोभायमान थी। घुंघराले बाल कंधे तक लहरा रहे थे। बाजूबंद बंधे थे। प्रतिदिन की तरह आज भी युवराज कामदेव को लजा रहे थे। उनके श्याम वर्ण की आभा सभी के मनों को लुभा रही थी।

एकलव्य अपने साथियों को देखकर बोला, ''निषादपुरम के वीरांे, आज मैं गुरूदेव द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या ग्रहण करने के उद्देश्य से जा रहा हूँ। मेरा विवास है मैं जल्दी ही वहां से दक्ष होकर वापस आऊँगा। उस समय आप सभी को धनुर्विद्या में दक्ष करूँगा। जिससे आपके निषादपुरम का यश वैभव सम्पूर्ण आर्यवर्त में फैल सके। मुझे विश्वास है मेरे आने तक आप लोग धनुर्विद्या के अभ्यास में सतत लगे रहेंगे। अच्छा अब मैं चलता हूॅ- जै-जै सीताराम।''

सभी मित्रों ने उसे विदाई प्रदान की, ''जै-जै सीताराम।''

एकलव्य अपने पिता श्री एवं माता श्री को प्रणाम कर उनसे अनुमति लेकर अपने पथ पर अग्रसर हो गया। उसके साथी उस ेजाते हुये देखकर सोच रहे थे, ''हमारे युवराज सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बनकर ही वापस आयेंगे।''

एकलव्य बिना पीछे देखे निर्लिप्त भाव से सीधे चले जा रहा था ।

वह घने जंगलों को पार करके निषादराज्य की अन्तिम सीमा वाले ग्राम में शाम होते होते पहुॅच गया। उसने देखा ग्राम के पशु जंगल से लौट रहे हैं। यमुना किनारे एक सुन्दर बगीचे को देखकर वह पुष्पक से अनुमति लेकर बगीचे में ठहरने के उद्देश्य से मुड़ गया। पुष्पक ग्राम में भोजन पानी लाने के लिये चला गया ।

जब ग्राम के प्रधान चन्दन को यह ज्ञात हुआ किबगीचे में रूकने वाला मुसाफिर कोई और नही हमारे युवराज एकलव्य हैं तो वह उसके स्वागत के लिये उपस्थित हुआ। एकलव्य ने उसे प्रणाम किया । चंदन उसे आशीष देने लगे । ठीक उसी समय धनुश वाण लिये एक युवती उसके पास आकर खड़ी हो गई। चन्दन ने कहा, ''ये हमारी पुत्री वेणु है यह धनुश संचालन में दक्ष है। यह एक बार लक्ष्य को देख ले, उसके पश्चात भले ही इसकी आंखों पर पट्टी बांध दें। यह लक्ष्य को बेध सकती है।''

एकलव्य को लगा कि यह तो अभ्यास में मुझसे भी आगे है। उत्सुकतावश एकलव्य ने उसका परीक्षण करना चाहा। चन्दन के इशारे पर एक पेड़ की टहनी से एक पुतले को टांग दिया गया। वेणु की आंखों पर पट्टी बांध दी गई।

एकलव्य और गुप्तचर पुश्पक मनोयोग से उसके बाण चलाने के उपक्रम को देखने लगे। सहसा उनने देखा िकवेणु के धनुश से सनसनाता हुआ तीर छूटा और लक्ष्य में जा लगा। पेड़ पर टंगे पुतले के माथे के ठीक बीचोंबीच इस गति से तीन धंसा था कि पुतला तेज गति से घूम रहा था ।

यह अकल्पनीय दृश्य देखकर वेणु एकलव्य के मन को भा गई। उसकी आँखों का यह लगाव भरा भाव पुश्पक को अनुभव हो गया।

वह वेणु से बोला, ''बेटी हमारे युवराज भी धनुर्धर हैं फिर भी वे धनुर्विद्या में दक्ष होने आचार्य द्रोण के पास जा रहे हैं। संयोग से हमारा पहला पड़ाव हमारे राज्य के समीपवर्ती आपके इस ग्राम में हैं। आप लोगों से मिलकर हमारे युवराज अत्यधिक प्रसन्न हैं।''

ग्राम प्रधान चन्दन ने अपने अन्तर्मन की बात कही, ''हम अपनी पुत्री के लिये धनुर्विद्या में पारंगत किसी युवक की खोज में है।''

एकलव्य उनके भाव को समझ गया। पुश्पक ने एकलव्य की मुखाकृति पढ़ते हुये चंदन से कहा, ''आप निश्चिन्तरहें। युवराज सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बन सकें तो आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।''

यह सुनकर एकलव्य को मन ही मन लगा- उसे निश्चय ही सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बनना होगा।

रात्रि को शैया पर लेटे एकलव्य की आँखों के आगे वेणु का सांवरा और खूब गठीला सुचिक्कन बदर, बल्कल फाड़ने को आतुर यौवन चिन्ह ओर उस के बड़े-बड़े कजरारे नयन आते रहे।

रात्रि विश्राम के पश्चात भोर ही वहां से जाने के लिये वह तैयार होने लगा। वेणु हाथ में कुद फल लिए उसे विदा करने आ गई। पुश्पक उन दोनों के मध्य विकसित लावण्य भाव काक अनुभव कर दोनांे के मध्य से हट गया।

वेणु ने एकलव्य से एकांत में केवल इतना ही कहा, ''मैं आपकी प्रतीक्षा करूॅगी। मैंने सर्वश्रेष्ठधनुर्धर से विवाह करने की प्रतिज्ञा की है। आज मुझे लग रहा है, मेरी इच्छा पूर्ण होगी।''

यह सुनकर एकलव्य ने कहा, ''मेरी भी यही इच्छा है कि मैं सर्वश्रेष्ठधनुर्धर बनूँ।''

यह सुनकर वेणु ने आंखें झुका लीं। इससे एकलव्य में कई गुना स्फूर्ति आ गई। वह वेणु के संदश को गुनते हुये पथ पर आगे बढ़ गया।

दूसरे व तीसरे दिन का पड़ाव कुरू राज्य के ग्रामों में हुआ। चौथे दिन उन्हांेने हस्तिनापुर की सीमा में प्रवेश किया। वहां पहुँचकर वे निषादवस्ती की ओर मुड़ गये। निषादबस्ती के लोगों ने जब अपने युवराज कोदेखा तो वे भाव विभोर होकर उसका स्वागत करने लगे।

रात्रि के समय में वृद्धजनों ने एकलव्य को हस्तिनापुर की सवर्णवादी राजनीति से अवगत कराया । एक वृद्ध बोले'-एकलव्य ! आपको यहां देख कर हम सबकी बरसों से दबी इच्दा पूण्रहोती नजर आ रही है। इन क्षत्रिय-ब्राहमणों ने युगों से समस्त प्राकर के अस्त्र शस्त्रों पर कब्जा जमा रखा ह । जबकि हम उनसे किसकी बात में कम नही है । ये लोग सिंह के शिकार से लेकर गुपतचर जैसे काम में हमारी मदद लेते रहे है, पर हम को राजय के किसी बड़े पद पर नहीं बेठाते । आप जेसे नौजवानों से लग रहा हैकि आने वाला समय हम पिछड़ों ओर जंगली जन जातियों का समय होगा ।

दूसरे वृद्ध ने कहा-इस में कोई सन्देह नही है, क्यों कि जंगली और प्शुपालक के रूप् में युगों से अपमान झेलने वाली जाति के एक युवक श्रीकृष्ण ने इन दिनों हस्तिनापुर से लेकर सिंधु तक के राजाओं को अपनी बुद्धिमत्ता का लोहा मनवा लिया है । हस्तनापुर की कराजनीति तो उन्ही के इर्द गिर्द चक्कर लगा रही है ।

वे हस्तिनापुर के भविश्य को लेकर चिंतित दिखाई दे रहे थे। इस बस्ती के लोगों का काम, भागीरथी में नौका चालन रहा है। इससे कुछ वृद्धजनों की पहुंच राजप्रासाद तक हो गई। एकलव्य को आचार्य द्रोण से मिलने की योजना बनाने में सभी ने विचार विमर्श किया।

रात्रिभोज के प्श्चात ही उसे विश्राम का अवसर मिल पाया।

सुबह एकलव्य अपने विश्रामस्थलसे रवाना हुआ ।

हस्तिनापुर, भव्य इमारतों का नगर था। इसकी शोभा देखते ही बनती। विशाल परकोटे के दरवाजे में प्रवेश करने केबाद मुख्य पथ के दोनों ओर कई कई तल उंचे बने भव्य भवनों की शोभा अवर्णनीय थी। एक वृद्ध निषाद पथ प्रदर्शन का कार्य कर रहा था।सम्पूर्ण पथ में एकलव्य गुरूदेव द्रोणाचार्य के लिये श्रद्धा और भक्ति सहेजता रहा। नगर में प्रवेश केसमय तो उसके हृदय में श्रद्धा और भक्ति का सागर उमड़ रहा था। जब एकलव्य आचार्य द्रोण के भवन पर पहुंचा, उसने देखा कि एक प्रहरी अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित द्वार पर खड़ा था। एकलव्य ने गुरूदेव से मिलने के लिये प्रहरी से समय दिलाने का निवेदन किया।

पहरेदार सूचना लेकर अंदर चला गया। एकलव्य को द्वार पर ही ठहरना पड़ा। पहरेदार लौट आया। आते ही उसने कहा, ''आचार्य अपने शस्त्र कक्ष में आने वाले हैं। आप लोग वहाँ पहुंच जाइये।''

एकलव्य शस्त्र कक्ष में पहुंच गया। उस कक्ष की एक दीवार के सहारे विभिन्न प्ररकार के धनुश टंगे हुयेथे। दूसरी ओर विभिन्न प्रकार के वाणों से उसे सुसज्जित किया गया था। तीसरी दीवार को अस्त्रों से सजायागया था

तथा चौथी तरफ अस्त्रों के विकास की कहानी सुशोभित थी। कक्ष को देखकर ही लग रहा थाकि यह अस्त्र शस्त्रों के ज्ञाता किसी महान् आचार्य का सुसज्जित कक्ष है।

पता लगा कि आचार्य यज्ञ से निवृत्त होकर जलपान के निमित्त अन्दर चले गये है। यज्ञ का धुंआ यज्ञशाला को सुवासित कर रहा था। एकलव्य ने एक-एक अस्त्र को ध्यान से देखना आरंभ किया ।

इसी समय एक तेजस्वी ब्राहमण कुछ राजकुमारों के साथ कक्ष में आते हुये दिखे। उन हृश्ट पुश्ट लम्बे चौड़े व्यक्तित्व को देखकर कौन आकर्शित नहीं होता। घनी दाढ़ी मूछें उनके व्यक्तित्व की आभा को द्विगुणित कर रही थी । एकलव्य ने अनुमान लगाया यही आचार्य द्रोण हैं !

आगन्तुको ने आचार्य कों दण्डवत प्रणाम किया। अपने सामने आ पहुंचने पर एकलव्य ने भी साश्टांग दण्डवत किया। भक्तिभाव से वह उनके चरण पकड़कर रह गया। अश्रु प्रवाहित हो उठे। उनका भक्तिभाव देखकर आचार्य द्रोण वोले, ''वत्स उठो, तुम कौन हो और तुम्हारा आगमन किस उद्देश्य से हुआ है ?''

साथ गया वृद्ध निषाद व गुप्तचर पुष्पक चुपचाप खड़े खड़े यह दृश्य देख रहे थे। एकलव्य आचार्य क ेप्रश्न का उत्तर दे रहा था, ''मैं एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र आपसे धनुर्विद्या ग्रहण करने के उद्देश्य से आया हूॅ।"'

आचार्य द्रोण ने यह संवाद सुन कर विस्मय से चौंक कर एकलव्य को देखा । वनवासी वस्त्रों से सजा हृष्ट पुष्ट युवक , हीरे से चमकती तेज नीली आंखें , आंखों में शिष्य बनाने का याचक भाव, साथ में वनवासी वृद्ध और एक अन्य प्रोढ़ व्यक्ति ं।श्

द्रोणाचार्य की आंखें में द्वंद्व का भाव आया.....एक पल को अपने राजकुमारों पर दृष्टिपात किया, अपनी शस्त्रशाला को देखा ओर फिर शून्य में ताकने लगे ।

सहसा उनकी आंखें में एक दृड़ता कोंधी । अपने बदन को कड़क किया । एकलव्य ने देखा कि उनका गठीला बदन एक कसमसाहट से भर गया है, अनेक उभरती नसें फूलती जा रही हैं । सारा बदन एक कंपकंपी से भरता दिखा, और उनके मुंह से धीर गंभीर आवाज गूंजी-''असम्भव ! बिलकुल असम्भव !''

'' पर क्यों गुरूदेव, मुझमें क्या कमी है ?'' एकलव्य का प्रश्न सुन कर सब उसके साहस पर चकित हो गये थे ।

एकलव्य की यह बात सुनकर द्रोणाचार्य उसे शिष्य स्वीकार करने, न करने का विश्लेशण करते हुये बोले, ''मैं क्षत्रिय राजकुमारों का आचार्य हूॅ। इन राजकुमारों के साथ तुम्हें शिक्षा देकर तुम्हारे साथ न्याय नहीं कर पाउॅगा। इसलिये मैं तुम्हें शिक्षा देने में असमर्थ पा रहा हूॅ।"'

एकलव्य भाव पूर्ण शब्दों में बोला, ''मेरी श्रद्धा और भक्ति में किसी प्रकार की कमी देखें तो

कहें। गुरूदेव आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लें।"'

यह सुनकर द्रोणाचार्य फिर कुछ क्षणों तक सोचते रहे। संभवतः उसे सन्तुष्ट करने के लिये उन्हें शब्द नहीं मिल रहे थे। उन्होंने कुछ शब्दों को वलात रोका और बोले, 'मैं इन राजकुमारों के साथ किसी निषाद को शिष्य नहीं बना सकता। कहां क्षत्रिय कहां निषाद! वत्स शूद्र जाति के युवक को क्षत्रिय राजकुमारों के साथ शिक्षा देना सम्भव नहीं है।"'

''क्षत्रिय राजकुमारों के साथ शुद्र जाति के युवक को शिक्षा देना सम्भव नहीं हैं।''मन ही मन एकलव्य ने इस वाक्य को अनेक बार दोहराया।

अब उसने चरण छोड़ दिये। वह स्वाभिमान से तनकर खड़ा हो गया। बोला, ''आचार्य, मैं आपका गोरवशाली शिष्य सिद्ध हो सकूंगा । मुझ पर कृपा करें, अपने निर्णय पर आप एक बार और करें और मेरे समर्पण को स्वीकार करलें।'"

इस प्रश्न के उत्तर में उनके शब्द निकले, ''मैंने गहराई से सोच लिया। इन राजकुमारों के साथ तुम्हें शिक्षा देना सम्भव नहीं है।"'

एकलव्य ने देखा- आचार्य के इस उत्तर को सुनकर राजकुमार मन्द मन्द मुस्करा रहे हैं।

यह दृश्य देखकर तो एकलव्य को वहां से लौटने का मन हो गया। वह समझ गया-वह इन अशिष्ट राजकुमारों के साथ कुछ भी नहीं सीख पायेगा।

उसने शिष्टता के लिये द्रोणाचार्य के पुनः चरण छुये और लौट पड़ा। वह वृद्ध निषाद एवं पुष्पक भीएकलव्य के पीछे पीछे निषादबस्ती तक चले आये।

जब यह समाचार उस वस्ती के लोगों ने सुना तो वे बहुतदुखी हुये। एक वृद्ध एकलव्य को समझाते हुये बोला, ''युवराज निराश न हों। मैं हस्तिनापुर की राजनीति से पूर्व ही परिचित हूॅ। यही होना था लेकिन अन्तिम क्षणों तक हमें आशा नहीं छोड़ना चाहिये। कहते हैं युवराज,संसार में किसी गुणवान की कोई कमी नहीं है। निश्चय ही भारत वर्ष में उनसे भी श्रेष्ठ आचार्य और भी होंगे।मेरी दृष्टि में आप अवन्तिकापुरी के सांदीपनी आश्रम में यहां से सीधे चले जायें।"'

यह सुनकर पुष्पक बोला, 'हम लोग यहां न आकर सीधे सांदीपनी आश्रम में गये होते तो निश्चय हीनिराश होकर नहीं लौटना पड़ता। वहां भेद भाव की खाई नहीं है।यहाँ राजपरिवार द्वारा संचालित शिक्षा प्रणाली है और उस गुरूकुल में आचार्य के स्वशासन की। एक में बाह्य चमक-दमक है दूसरी में सादगी।

इस समय एकलव्य सोच के गहरे सागर में डुबकियाँ लगा रहा था। उसे इनकी ये बातें सुनाई ही नहींपड़ रहीं थी। निषादबस्ती के लोग यह समाचार सुनकर एकत्रित हो गये। सभी एकलव्य को समझाने का प्रयास कर रहे थे, "युवराज आप निराश हो गये तो हमारा अस्तित्व हमेशा हमेशा के लिये ही समाप्त हो जायेगा।''

वे इस कथन से एकलव्य में स्फूर्ति भरने का प्रयास कर रहे थे। एकलव्य उनसबके समक्ष अपने आप केा, सहज प्रदर्शित करने का प्रयास कर रहा था।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही गुप्तचर पुष्पक के साथ एकलव्य ने हस्तिनापुर छोड़ दिया।

हस्तिनापुर से प्रस्थान करते ही एकलव्य के अन्तर में परमहंस जी के शब्द गॅूजने लगे, 'तेरे आचार्य तोद्रोणाचार्य ही हैं।" .....किन्तु कहां बने द्रोणाचार्य मेरे आचार्य़ !..... क्या परमहंस जी ने असत्य कह दिया। सम्पूर्णनिषादपुरम में यह विश्वास है कि परमहंस जी जो कुछ कहते हैं सत्य ही कहते हैं। यह सत्य कहां निकला ?....क्यों भेजा था उन्होंने मुझे इनके पास ?... द्रोणाचार्य की शिक्षा व्यवस्था की चमक दमक की बातें सुनकर मेरा मनभी तो यहां आने के लिये व्यग्र था। परमहंस जी मेरे मन की बातें जान गये होंगे। इसीलिये उन्होंने मुझे यहां भेजदिया।

परमहंस जी के शब्दों को एकलव्य सम्पूर्ण पथ में उलट पुलट कर देखता रहा। अनेक बार द्वन्द में निषादपुरम का पथ छोड़कर अन्यंत्र जाने का मन बना। उसने पुष्पक से कहा तो पुष्पक बारम्बार उसे समझाता रहा। उसे उसकी एक हीबात निषादपुरम पहुॅचने के लिये बाध्य करती रही- "एक बार परमहंस जी से मिलकर तो देख लें। निश्चय हीउनके शब्दों का कोई दूसरा अर्थ होना चाहिये। परमहंस जी उस दिन आपके अल्प आग्रह पर ही राजप्रासादचले आये। हमें यह सन्देश देने के बाद, तत्क्षण लौट भी गये।''

इसी चिन्तन से प्रभावित होकर एकलव्य निषादपुरम पहुॅच गया।

सम्पूर्ण निषादपुरम में एकलव्य के वापस आने की बात फैल गई। ग्रामवासी एकलव्य के ही कनहीं बल्कि पूरे निषादपुरम के भविष्य के बारे में चिन्तित दिखाई देने लगे।

एकलव्य तो परमहंस जी से अपना प्रश्न लिये हुये हस्तिनापुर से आया था। वह घाट पर पहंुचते ही निषादपुरम में उनकी उपस्थिति से अवगत हो गया। उसे पता चल गया कि परमहंस बाबा शिवालय के चबूतरे पर विराजमान हैं। वह सीधे राजप्रासाद न जाकर बाबा के पास पहुंच गया।परमहंस जी की दृष्टि जैसे ही एकलव्य पर पड़ी। वे उसकी कोई बात सुने बिना ही एकलव्य से बोले, "वत्स एकलव्य, तुम्हारे गुरू तो द्रोणाचार्य ही हैं।"'

उनकी यह बात सुनकर वहां उपस्थित लोग सोच रहे थे, "द्रोणाचार्य ने हमारे युवराज को शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया। इस सब के पश्चात भी परमहंस जी ये क्या कह रहे हैं, "तुम्हारे गुरू तो द्रोणाचार्य ही हैं।"'

उत्तर सुनकर एकलव्य से चुप न रहा गया। प्रश्न कर दिया, ''बाबा अब वे मेरे गुरू कैसे ? मैं समझा नहीं।'"

परमहंस जी ने एकलव्य की बात सुनी और बोले, "सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनना है तो श्रद्धा और विश्वास से उनको प्रतीक मानकर सतत् अभ्यास कर। जाऽऽ तेरे गुरू तो द्रोणाचार्य ही हैं।"' वत्स तेरी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

एकलव्य ने देखा कि उस समय वहां अधिकांश निषादपुरम उपस्थित था।

निषादराज हिरण्यधनु भी वहां आ पहुंचे थे उनके अन्तर में परमहंस जी के प्रति श्रद्धा और विश्वास है ही, वे अनुभव कर रहे थे, कि परमहंस जी का श्रद्वा और विश्वास के साथ सतत् अभ्यास का संदेश तो सार्थक है लेकिन द्रोणाचार्य का प्रतीक स्थापित करने की बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी।

सांझ ढले सब लोग अपने अपने घर को लौटे ओर परमहंस बाबा फिर अज्ञात स्थल की ओर निकल गये थे ।

निषादराज फिर परेशान से होकर अपने महल में टहल रहे थे ।

4

आज निषादराज हिरण्यधनु अत्याधिक चिन्तित हैं। उन्हे लग रहाथा कि यदि आरंभ से ही संादीपनि आश्रम की ओर एकलव्य को प्रेरित किया होता, तो आज यह समस्या सामने ही न आती। द्रोणाचार्य की शिक्षा पद्धति की साज सज्जा हम सबको आकर्षित करती रहीऔर हमने एकलव्य को आचार्य द्रोण के यहां भेज दिया ? द्रोणाचार्य भी नीच जाति के युवक को राजकुमारों के साथ कैसे सिखाते ? आचार्य ने अपनी शब्दावली से सम्पूर्ण निषादजाति का अपमान कियाहै। जिस आदमी में सवर्ण अवर्ण का ऐसा विष भरा है , समझ नहीं आ रहा है उनका प्रतीक उसे कैसे कुछ सिखा पायेगा। परमहंस जी का यह कहना भी अजब है कि इसे संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनना है तो द्रोणाचार्य को प्रतीक मानकर श्रद्धा और विश्वास से सतत् अभ्यास करन पड़ेगा। प्रतीक से यह कैसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन पायेगा ? परमहंस जी की इन बातों से मन कचपचा रहा हैलेकिन ये परम संत जो कुछ कहते हैं कुछ न कुछ तथ्य उनकी बात में रहते हैं। उनकी बातें मिथ्या नहीं होसकतीं।

एकलव्य पिताश्री को सोचते हुये देखकर बोला, ''पिताश्री, आप चिन्तित न हों। परमहंस जी के कथनका, हम पालन करके तो देखें। उनका यह कथन कि सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनना है तो द्रोणाचार्य के प्रतीक के सहारेसतत् अभ्यास करना पड़ेगा, उनका यह वाक्य मुझमें अनन्त चेतना का संचार कर रहा है।''

उसकी यह बात सुनकर हिरण्यधनु बोले, ''हमें परमहंस जी की बातों पर सन्देह नहीं करना चाहिये। वेसर्वज्ञ हैं। श्रद्धा और विश्वास से हम उन्हीं के आदेश से आगे बढ़ते रहे हैं। हमारी जाति को सन्तों के वचनों पर पूर्ण आस्था और विश्वास है।

बात एकलव्य ने पूर्ण की, ''पिताश्री, मैं निषादपुरम से दूर कहीं जंगल में अभ्यास स्थली का निर्माण करना चाहता हूँ। आप निषाद जाति की प्रगति चाहते हैं इसलिये मुझे धनुर्विद्या के अभ्यास के लिये जाने कीआज्ञा प्रदान करें। मैं जहां भी अभ्यास करूं, आप लोग मोह वश उसमें व्यवधान उत्पन्न न करें। मैं परमहंस जी की बातों का अक्षरशः पालन करना चाहता हूँ। और यहां से कही बाहर जाकर अभ्यास करने की इच्छा मेरे मन में आई है।''

एकलव्य की बात सुनकर हिरण्यधनु ने भारी मन से कह दिया, ''जाओ वत्स, हम सब की शुभकामनायें तुम्हारे साथ हैं। तुम धनुर्विद्या में पारंगत होकर लौटो।''

अगने दिन सुबह सुबह एकलव्य पिताश्री एवं माताश्री से अनुमति लेकर चल पड़ा। वह राजप्रसाद से बाहर निकलातो उसने देखाकि उसके साथ चलने के लिए उसके युवा साथी बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। एकलव्य ने उन्हें अपना मन्तव्य समझाते हुये कहा- ''मैं यहां से दूर कहींअभ्यास करने के लिये जा रहा हूँ। आप लोग यहीं रहकर अभ्यास करते रहें। मेरे अभ्यास में व्यवधान उत्पन्न नकरें।''

उसकी यह बात सुनकर एक युवक बोला, ''युवराज हम आपको व्यवधान पहुँचाये बिना आपके साथअभ्यास करते रहेंगे।''

एकलव्य ने उन्हें समझाते हुये कहा, ''आप अपना दायित्व पूर्ण कीजिये मुझे अपना दायित्व निर्वाह करने दें।''

दायित्व की बात सुनकर सभी लोग ठिठक कर रह गये। एकलव्य आगे बढ़ गया।

निषादपुरम से बाहर आकर वह इन्द्रन नदी के घाटपर आ गया। नाव से उसने इन्द्रन नदी पार की। अब वह उस स्थल की खोज में आगे बढ़ने लगा, जहां रहकर वह अभ्यास कर सके।

एकलव्य को याद आने लगी लक्ष्यबेधी वेणु की, निश्चित ही वह मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकती।इसी चिन्तन में वह आगे बढ़ता ही गया।

सांझ तक वह वेणु के उसी ग्राम के निकट पहुँच गया। और उस बगीचेकी ओर मुड़ गया जहाँ वेणु की अभ्यास स्थली थी। दिन अस्त होने को था। वेणु अपने अभ्यास के उपरान्त घरलौटने को तत्पर थी। एकलव्य को समक्ष देखकर बोली, ''युवराज, आप यहां ! आप तो आचार्य द्रोण से शिक्षाग्रहण करने गये थे ! इधर कैसे ?''

इधर कैसे शब्द में अर्थ छुपा था। एकलव्य समझ गया। वेणु समझ रही है, मैं उसके सम्मोहन मेंद्रोणाचार्य के पास न जाकर यहाँ लौट आया हूँ। यह सोचकर बोला, ''आचार्य द्रोण ने मुझ शुद्र जाति के युवकको राजकुमारों के साथ शिक्षा देने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् मैं वहां से निषादपुरम पहुँचा। वहां इनदिनों एक परमहंस सन्त विचरण कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि मेरे गुरू तो द्रोणाचार्य ही है। उनको प्रतीक मानकर अभ्यास करूं तो मैं सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन जाऊँगा। निषादपुरम से इतनी दूर इधर इसलिये चला आयाजिससे अभ्यास में व्यवधान न हो।

वेणु ने उसकी मुखाकृति की ओर देखते हुये व्यंग्य में कहा, ''यहां मैं भी तो आपके धनुर्विद्या के अभ्यासमें व्यवधान उत्पन्न कर सकती हूँ।''

एकलव्य ने तत्क्षण उत्तर दिया, ''देखो वेणु, बात यह है तो मैं तुम्हें समझ ही नहीं पाया हूँ। तुम्हारी बातेतो मुझे आगे बढ़ने के लिये प्रेरित कर रही हैं। हां तुम्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं है तो मैं अन्यत्र चला जाता हूँ।''

यह कहकर एकलव्य जाने के लिये तत्पर हो गया। वेणु ने बिना सोचे विचारे ही तत्क्षण उसका हाथपकड़कर कहा, ''युवराज सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनें तभी मेरा मन्तव्य पूर्ण होगा। अन्यथा मुझे जीवन भर अविवाहित रहना पड़ेगा।''

वेणु के दृढ़ निश्चय की बात से एकलव्य समझ गया- मेरे लिये यही उचित अभ्यास स्थल है। जिसका लक्ष्य इतना श्रेष्ठहो वह मेरे कार्य में बाधक नहीं साधक है। यही सोचकर बोला, ''वेणुऽऽऽ, जहां आपको मेरे लक्ष्य में भटकाव दिखे मुझे सचेत करती रहें।''

''अभी मैं सचेत करने वाली कौन हूँ ?''

''वेणु तुम मेरी भविष्य की निधिहो।''

यह वाक्य सुनकर वह बोली, ''युवराज ने मुझे इस योग्य समझा है, मैं धन्य हो गई।''

एकलव्य विषय पर आते हुये बोला, ''हम यहां बातें करने के लिये नहीं सतत् अभ्यास करने के लिये हैं।''

''युवराज आप चिन्ता न करें आने वाले समय में लोग आपकी इस सहयोगिनी का नाम भी नहीं जानपायेंगे, यही मेरा धर्म है। आज आप यहीं विश्राम करें। यह प्रतिबन्धित क्षेत्र है। यहां मेरी इच्छा के बिना मेरे पिताश्री भी प्रवेश नहीं करते। यह स्थल हमारे ग्राम से निकट है, घने जंगलों का सानिध्य प्राप्त है। पास में यमुना मैया प्रवाहित हो रही हैं। युवराज यहीं से कुरूराज्य की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। इस सीमा की मर्यादा को कुरूराज्य के लोग भी उल्लंघन नहीं करते। सामने मेरी पर्णशाला है । कन्दमूल फल का यहां पर्याप्त भण्डार है। यहां अधिकांश वृक्ष फलदार हैं। भोजन व्यवस्था के लिये भटकने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे मनोरम स्थल ने ही मेरा निर्माण किया है। आज के लिये कंद, मूल रखे हैं। अन्धेरा हो चला। आप दूर यात्रा से आये हैं, रात्रि भोजन कर विश्राम कीजिये। माताश्री मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी। अब मैं चलती हूँ।''

रात्रि में एकलव्य को देर तक नींद नहीं आई। वह सोच रहा था- परमहंस बाबा ने गुरूदेव द्रोणाचार्य केकिस प्रतीक को सामने रखने की बात कही है ?..... यहाँ प्रतीक कहाँ से जुटा सकूँगा।..... सहसा उसे बचपन में सीखी मूर्ति निर्माण करने की बात याद हो आई। गुरूदेव जैसे पूज्य व्यक्ति का प्रतीक उनकी मूर्ति

के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? ऐसा सोचकर उसने निश्चय कर लिया, ''कल सुबह गुरूदेव की मूर्ति का ही निर्माण कर प्रतीक के रूप में स्थपित करूँगा।''

प्रातः एकलव्य अपने समय से ही उठ गया। यमुना के किनारे से गीली मिट्टी ले आया। पहले उसने आचार्य को बैठाने के लिये एक स्थान का चयन किया। ब्रह्म महूर्त में ही आचार्य द्रोण की मूर्ति का निर्माण शुरू कर दिया। उसने आचार्य को ध्यान से देखा था। उनकी देहयश्टि कैसी है ? चन्दन कैसे लगाते हैं ? जनेऊ कैसे पहनते हैं ? अधो वस्त्र के पहनने का आकार कैसा हैं ? वह मूर्ति निर्माण में ऐसा दत्तचित्त हो गया कि उसे पता ही नहीं चला कब दिन निकल आया, कब दिन चढ़ गया ? जब वह इस कार्य से निवृत हुआ तो उसने मुड़कर देखा, पता नहीं कितनी देर से वहां खड़ी वेणु मन्द मन्द मुस्कुरा रही है।

एकलव्य ने उसे मन्द मन्द हंसी बिखेरते हुये देखकर उसका उसी भावभूमि से मुस्कुरा कर स्वागतकिया। मूर्ति की प्रशंसा में वेणु बोली, ''आश्चर्य ! आप इतने श्रेष्ठ मूर्तिकार !''

मूर्ति की प्रशंसा सुनकर एकलव्य बोला, '' तब मैं किशोर अवस्था में था जब कि एक बार हस्तिनापुर के प्रमुख शिल्पी सुमतजी इन्द्रन के घाटसे निकले थे। उन्हें विश्राम की इच्छा हो आई तो वे कुछ दिनों हमारे निषादपुरम में ठहरे रहे। उन्होंने ही मुझ ेमूर्ति के निर्माण में दक्ष किया है।''

यह सुनकर वेणु को कहना पड़ा, ''ऐसी बहुमुखी प्रतिभा को पाकर मैं धन्य हो गई। आप तो दिनप्रतिदिन गहरे होते चले जा रहे हैं। आप मूर्ति का निर्माण करने में लगे थे, गुरूदेव को अर्पित करने पुश्प औरभोग लगाने के लिये कन्दमूल और फल ले आई हूँ। उन्हें ये अर्पित करके उनको अभिपूजित कीजिये।''

अब एकलव्य ने गुरूदेव को पुष्पों से सुसज्जित किया। कन्दमूल एवं फलों का भोग लगाया। अपनाधनुष और बाण गुरूदेव के चरणों में रख दिये। गुरूदेव से प्रार्थना की। उन फलों में से अर्धप्रसाद वेणु को देतेहुये कहा-''आप भी यह प्रसाद ग्रहण करें।''

दोनों ने बड़े प्रेम से प्रसाद ग्रहण किया। एकलव्य ने कमण्डल में जल लाकर रखा था। दोनों ने जलग्रहण किया। अब एकलव्य ने श्रद्धा और भक्ति से बचपन में आचार्य से कन्ठस्थ की हुई वन्दना का सस्वर पाठकिया-

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु, गुरूर्देवो महेश्वरः।

गुरूरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।

तत्पदं दर्शितम् येन सः तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

उसके बाद उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। धनुष और बाण उठा लिये। उसे लग रहा था, जैसे श्री गुरूदेव ने अपने हाथों से उठाकर उसे धनुष और वाण दिये हों। अब वह वृक्ष के फलों को लक्ष्य मान कर अभ्यास में जुट गया। वेणु यह भाव देखकर वहां से हट गई। यहां से किन्चित दूरी पर उसी बगीचे में वेणु भी एक नयेे अभ्यास स्थल पर जाकर अभ्यास करने लगी।

सायंकाल का समय हो गया। उसने देखा-एकलव्य अभी भी तन्मयता से अभ्यास में रत है। उसने उसके अभ्यास में व्यवधान उत्पन्न नहीं करना चाहा। उसने रात्रि के लिये कुछ कन्दमूल फल चुने और गुरूदेव की मूर्ति के पास ही एक बांस की टोकरी में उन्हें रखकर अपने ग्राम में लौट आई।''

दूसरे दिन अपने समय से वेणु अभ्यास स्थली पहुँची। एकलव्य बांस से बाण तैयार करने में लगा था।गुरूदेव वन पुष्पों से सुसज्जित थे। वहां कुछ नये और ताजा कन्दमूल और फल भी रखे थे। वह समझ गई एकलव्य ने अपनी व्यवस्था स्वयं कर ली है। आज वेणु बाणों के कुछ फलक लेकर आई थी। विभिन्न प्रकार के बाणों के फलक उसने चुपचाप एकलव्य के समक्ष रख दिये। यह देखकर एकलव्य बोला, ''रात्रि से ही मैं बाणों के फलकों के बारे में सोच रहा था। वेणु तुम्हें कैसे ज्ञात हो गया कि मुझे बाणों के लिये फलकों की आवश्यकता है।''

यह सुनकर वेणु बोली, ''युवराज, रात्रि से ही मेरे मन में बारम्बार यही आ रहा है कि युवराज को बाणोंके लिये फलकों की आवश्यकता होगी। मेरे पिता श्री पांचाल नरेश के यहां आते-जाते रहते हैं। मेरे हितार्थ वहां के लोहकर्मी से हर बार नये-नये तरह के फलक लेकर आते हैं।''

उसकी यह बातें सुनते हुये वह फलकों की नांेकें देखने लगा। एक दो फलकों के बारे में एकलव्य ने वेणु को निर्देश दिये, ''ये फलक कहीं आगे सर्पाकार होते तो इनका वेग कई गुना अधिक होता, किन्तु यह सब कैसे संभव है ?''

यह सुनकर वेणु ने कहा, ''सर्वप्रथम जब आचार्य द्रोण हस्तिनापुर पहुँचे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर, पूर्व से चल रही आचार्य कुलपरम्परा को ध्वस्त कर दिया। उनकी इस नीति से त्रस्त होकर हस्तिनापुर से पलायन करके एक आचार्य हमारे ग्राम में आकर रहने लगे हैं। इससे हमारे शस्त्र और शास्त्र अभ्यास की समस्या का समाधान हो गया है। हमारे पिताश्री ग्राम प्रधान होने के कारण उनकी भोजन प्रसादी की व्यवस्था करते रहते हैं। उन्हीं के साथ हस्तिनापुर से एक लोहकर्मी भी हमारे ग्राम में आकर रहने लगा है। इन्हें कल अपने ग्राम के उस लोहकर्मी से उसे निर्मित कराकर लाऊँगी।''

एकलव्य ने उसके सहयोग के लिये आभार व्यक्त किया, ''आपकी बातचीत से मैं समझ गया कि आप विदुशी भी हैं। आपके सहयोग के लिये वेणुजी, मैं आपका यह उपकार कैसे चुकता कर पाउँगा ?''

आभार के प्रश्न पर वेणु की आँखों ने मुस्कान की आभा बिखेरी और बोली, ''दक्ष धनुर्धर बनकर।''

उसने इस एक वाक्य के द्वारा जो कहना था वह सब कुछ कह दिया। एकलव्य इन भावों को हृदय में सहेज कर रह गया।

अब गत दिवस की तरह एकलव्य ने गुरूदेव का भोग लगाया और कन्दमूल फलों का अर्धभाग वेणु केसामने रख दिया। वेणु गदगद होकर सोचने लगी- यह कार्य तो मेरा है जिसे वे स्वयम् करने लगे हैं।

फलाहार के उपरान्त दोनों अपने अपने स्थान पर धनुर्विद्या के अभ्यास में लीन हो गये। रात्रि के लियेफलाहार की व्यवस्था करके, वेणु उससे कुछ कहे सुने बिना ही सांझ ढ़ले घर लौट आई।

दूसरे दिन जव वेणु अभ्यास स्थल पर पहुँची। उसने देखा- एकलव्य गुरूदेव के समक्ष ध्यान मग्न बैठाहैं। कुछ कह रहा है, कुछ प्रश्नों के उत्तर खोज रहा हैं।

उसकी मुद्रा से वेणु ने अनुभव किया, ''एकलव्य के मन में कुछ प्रश्न उठे होंगे। उन्हीं के उत्तर गुरूदेवसे पूछ रहे हैं। आश्चर्य है ऐसी श्रद्धा और भक्ति पर। यदि ऐसी श्रद्धा भक्ति किसी की हो जाये तो अन्तर्मन सेकिसी भी प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो सकता है। यह तो मूर्ति है, कदाचित साक्षात् गुरूदेव होते तो क्या होता !''

एकव्य गुरूदेव से ध्यान में वार्तालाप करके उठा। उस समय फलाहार का समय हो चुका था। आज फलाहार की डलिया वेणु ने उठा ली। गुरूदेव के समक्ष अर्पण करने के लिये उसमें से कुछ कन्दमूल और फल चुने। उन्हें गुरूदेव के समक्ष रखते हुये, अपने ग्राम के आचार्य से सीखे मन्त्र के भावार्थ से, हाथ जोड़कर उनसे आग्रह किया, '' हे गुरूदेव शरीर में व्याप्त पाँचों वायु, प्राण, समान, उदान, अपान और व्यान के समाहार के लिये आप यह आहार ग्रहण करें।''

कमण्डल के जल से आर्घ देकर आचमन कराया। उस डलिया के फलों का अर्धभाग एकलव्य के समक्ष प्रस्तुत कर दिया और बोली, ''युवराज ग्रहण करें।''

यह देखकर युवराज एकलव्य बोला, ''यह मेरा कार्य था आपने उसमें हस्तक्षेप।''

वेणु ने उत्तर दिया, ''मैंने कार्य में हस्तक्षेप नहीं, बल्कि नारी के दायित्व का पालन किया है।''

''अभी वेणु जी, आप नारी कहां हैं ! अभी तो धनुर्विद्या के अभ्यास कार्य में सहयोगी की भूमिका का निर्वाह कर रहीं हैं।''

''युवराज, कोई सहयोगिनी नारी कब बन जाती है ?''

''वेणु जी सब भावना के खेल हैं। हमारे चित्त में भी भटकाव है आपकी सुन्दरता को यदि हम नारी की भावना से देखने लगें तब आपके प्रति हमारी दृष्टि बदल जायेगी।''

युवराज की भावनाओं को समझते हुये बोली, ''युवराज, हम दोनों युवा हैं। रोमांच का प्रवाह हृदय में तीव्र हो रहा है। किन्तु हम लक्ष्य से बंधे हैं। इन प्रश्न उत्तरों में न उलझें।''

एकलव्य वेणु की बातों को गुनते हुये कन्दमूल और फल ग्रहण करने लगा। फलाहार के बाद आचमनलिया तब वेणु ने प्रश्न किया, ''गुरूदेव से प्रश्नों के उत्तर मिले !''

एकलव्य समझ गया- वेणु धनुर्धर है, वह सब कुछ समझ रही है। उसने यही सोचकर उत्तर दिया,''गुरूदेव के समक्ष बैठकर प्रश्न करने से, आज के सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान प्राप्त हो गया है।''

''आश्चर्य है ! आपको अदृश्य से उत्तर मिलना शुरू हो गये हैं! आप तो परमयोगी हैं। गुरूदेव की अपनेशिश्य पर यह तो अपार कृपा है।''

''एकाग्रता चित्त के निरोध से सम्भव है। लक्ष्यबेध में एकाग्रता महत्वपूर्ण तत्व है। आप भी तो परम योगिनी हैं, अन्यथा इतना उत्कृष्ट लक्ष्यबेध कैसे सम्भव है?''

''आश्चर्य है ! आपको मैं योगिनी लगी हूँ !''

''किसी भी अभ्यास में लयबद्ध होना योग है। वेणु जी, आप हमारी बातों पर सन्देह न करें।''

' 'रामऽ रामऽऽ। मैं और आपकी बातों पर सन्देह ! युवराज आप पर सन्देह करती तो े वरण का पस् ्र ताव.....।''

''वेणु जी यह मेरा सौभाग्य है लेकिन अपने को आपके योग्य .....।''

''युवराज, अभ्यास से सब कुछ सम्भव है।''

दोनों इन्हीं भावनाओं को गुनते हुये अपने-अपने अभ्यास में लग गये।

रात को नींद की प्रतीक्षा में लेटे एकलव्य की आंख्वों के आगे रह रह कर वेणु का सांवला गठीला बदन, चेहरे की चमकदार त्वचा, हिरणी सी बड़ी बड़ी उतसुक और सक्रिय आंखें लम्बी पुश्ट ीाुजाए, कटि के ऊपर बिना वस्त्रों का दिखता आमंत्रण्र सा देता योवन उसकी नींइद को कोसों दूर उड़ाये लिए जा रहा िा ।

बड़ी कठिनाई्र से उस दिन नींद आइ्र एकलव्य को ।

दूसरे दिन एकलव्य अन्य दिनों की अपेक्षा जल्दी उठ गया। दैनिक कार्यों से निवृत होकर गुरूदेव केसमक्ष जाकर बैठ गया। आज कल की अपेक्षा कुछ कठिन प्रश्न उभर कर आये। गुरूवन्दना के उपरान्त उसने गुरूदेव से प्रश्न किया, ''गुरूदेव यदि आप यहां साक्षात् उपस्थित होते तो धनुर्विद्या सीखने में जितना श्रम करना पड़ रहा है, उतना श्रम नहीं करना पड़ता।''

प्रश्न बड़बड़ाने के बाद वह अंतर की आवाज को सुनने के लिये एकाग्र हो गया। उत्तर मिला-''उस समय प्रश्न भी मैं ही करता, उत्तर भी मैं ही देता। यहां उत्तर पूछने का कार्य तुम्हें करना पड़ रहा है।''

वह अगला प्रश्न बुदबुदाया, ''गुरूदेव, लक्ष्यभेद में भटकाव है। बाण उचित स्थान पर नहीं लगते।''

प्रश्न करने के बाद पुनः अन्तर में गुरूदेव की आवाज सुनने के लिये एकाग्र होकर बैठ गया।उत्तर मिला, ''वत्स, जिस प्रकार प्रश्न का उत्तर सुनने के लिये एकाग्र हो जाते हो, ठीक वैसे ही वाण छोड़ते समय भी एकाग्रता की आवश्यकता है। लक्ष्य से मन भटक गया तो, संधान उचित नहीं होगा।

''गुरूदेव, वेणु शब्दभेदी बाण चला लेती है।'"

इस प्रश्न का उत्तर सुन पड़ा, ''वत्स, सम्पूर्ण खेल एकाग्रता और सतत् अभ्यास का है।"'

आचार्य द्रोण की मूर्ति के समक्ष बैठे एकलव्य का बुदबुदाहट अर्न्तमुखी थी। सतत् अभ्यास की बात

सुनकर वह गुरूदेव के सामने से उठा। उसने वेणु की ओर देखा और चिन्तन में व्यवधान उत्पन्न न करने हेतुतर्जनी अंगुली से मौन रहने का संकेत करते हुये फलों का अर्ध भाग ग्रहण किया और जाकर अभ्यास करने लगा।

दूसरे दिन वेणु एकलव्य की मुखाकृति से गुरूदेव से होने वाले प्रश्न उत्तरों को समझने में असमर्थ रही। एकाग्रता के अन्त में हर दिन की तरह तर्जनी अंगुली से मौन रहने के संकेत ने पूछने भी नहीं दिया।

यों कुछ दिन बिना वार्तालाप के निकल गये।

वेणु ने अपनी माताश्री द्वारा सभी बातें अपने पिताश्री चन्दन से कह दी। ग्राम के सभी लोगों को निर्देशित कर दिया गया कि, कोई भी युवराज के अभ्यास में व्यवधान उत्पन्न न करे।

ग्राम प्रधान चन्दन भी एकलव्य से मिलने के लिये कभी नहीं गये। इन दिनों जब एकलव्य अभ्यासरतहोता, प्रश्न उत्तर के लिये वेणु भी गुरूदेव के समक्ष ध्यान में बैठने लगी।

0000

एक दिन गुरू द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की क्षमता में वृद्धि करने के लिये आदेश दिया, ''सभी राजकुमार आखेट पर चलें।''

कुछ उनके इस आदेश को सुनकर फूले न समाये।

कौरव और पाण्डवों के प्रथक-प्रथक दल बन गये। अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो किसी ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। किसी ने दक्षिण की ओर। अंगरक्षकों हांकेवालों एवं शिकारी कुत्तों के समूह उनके साथ थे। पाण्डव दक्षिण की ओर चले। इनका प्रिय श्वान भी इनके साथ था। जंगल में भटकते हुये वह जाने कहां जा निकला।

पाण्डव शिकार की खोज में इतने तन्मय हो गये कि उनका श्वान पीछे छूट गया। सहदेव का ध्यान उसकी ओर गया। उसने आश्चर्य किया, '' अरे ! बड़े भैया हमारा श्वान कहाँ गया ?''

वे श्वान को न पाकर चिन्तित हो उठे।

नकुल बोला, '' इस घनघोर जंगल में उसे कहाँ खोजें ?''

भीमसेन ने अल्हड़पन में उत्तर दिया, ''धरती माता तो उसे निगलने से रहीं।''

उनकी बात की ओर ध्यान दिये बिना अर्जुन बोला, '' हमें उसे खोजना ही पड़ेगा। वह हमारा प्रिय श्वान है।''

युधिश्ठिर ने आदेश दिया, '' हम लोग चारों ओर गहनरूप् से अपनी दृश्टि डालते हुये कुरूराज्य की सीमा की ओर प्रस्थान करें। उधर जंगली जानवरों का आधिक्य है। हम ष्ीघ्रता से आगे बढें, कहीं किसी कजंगली प्शु ने उसे खा न डाला हो !''

उनका आदेश पाकर वे तीव्रगति से आगे बढ़ने लगे। भीमसेन को उसे खोजने में झुंझलाहट होने लगी।

वह अपनी भावना व्यक्त करते हुये बोला, '' बड़े भैया कुरूराज्य की सीमा समाप्त होने को है और उस महाश्वान के दर्शन ही नहीं हो रहे हैं। वह लौट कर घर न चला गया हो ।''

युधिश्ठिर उसके मनोभाव समझते हुये बोले, '' क्यों, क्या भूख लगने लगी ? इसीलिये घर की याद आ रही है।''

सहसा नकुल का तीव्र स्वर सुन पड़ा, ''अरे ! अरे ! वह रहा हमारा प्रिय श्वान।'

....और सबकी निगाह हठात उस श्वान परपड़ी तो लगभग सबके मुह से चीख ही निकल गई-बाप रे ! ये किस हालत में लौटा है ।

वे उसके पास जाकर खड़े हो गये।

ष्वान लगभग रो रहा था और उसका मुँह पूरा खुला हुआ था और वह उसे बंद नही कर पा रहा था क्यों कि वह बाणों से भरा हुआ था। अर्जुन करूणावश उसके पास बैठ गया। उसने प्रयत्न करके श्वान के मुँह में ठंसे सारे बाण निकाले। पता चला कि बिना नोक के बाणों से उसका मुँह बन्द था। इतने बाण लगे होने पर भी उस श्वान के मुँह में कहीं खरोंच तक नहीं आई। बाण निकल जाने के उपरान्त वह पूँछ हिला कर एवं जीभ निकालकर उनका आभार मान रहा था।

पाण्डव अनुभव कर रहे थे, ''श्वान का मुँह बन्द करने के लिये बिना फलक के बाण मारे गये हैं। बाणमारने वाले का सन्तुलन एवं स्फूर्ति तो विलक्षण है।''

अर्जुन ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, ‘‘बड़े भैया,ऐसा तो नहीं कि ये बाण किसी ने हमारे ष्ुवान को पुचकार कर रोका हो और हाथ से उसके मुंह में खोंस दिये हों । कदाचित यह बाण धनुष पर ही संधान करके मारे हैं तो निश्चय ही हमें बाण मारने वाले की खोज करना चाहिये।’’

‘‘अर्जुन, मैं भी यही सोच रहा हूँ। हमें ऐसे धनुर्धर से मिलना ही चाहिये।’’

उनका आदेश पाकर वे उस बाण मारने वाले की खोज में तत्क्षण निकल पड़े। वह श्वान उन सबकोउस स्थान पर ले गया जहां एकलव्य लक्ष्य के संधान में रत था। पाण्डव उसकी वेशभूषा देखकर पहिचान नहींपाये। वह एक बाण चलाता तत्क्षण दूसरा बाण उसे आगे जाने से रोकने के लिये मार रहा था, और वह अपने उददेश्य मे ंसफल था। सभी पाण्डु पुत्र उसकी इस प्रतिभा को देखकर आश्चर्य चकित रह गये।

इसी समय एकलव्य की दृष्टि इन सभी पर पड़ी तो वह उनके पास आ गया। पाण्डवों की ओर से युधिष्ठिर कीक आवाज में प्रश्न सुनाई पड़ा, ‘‘तुम कौन हो ?’’

एकलव्य ने सहजता से कहा, ‘‘मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र आचार्य द्रोण का शिष्य एकलव्य।’’

पाण्डवों को याद हो आई उस दिन की जब गुरूदेव ने इसे शिष्य बनाने से इन्कार कर वापस कर दिया था। वे उससे बिना कुछ कहे सुने, अपने श्वान को लेकर वापस चल पड़े । वे सब लौटते हुये इस सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर की मन ही मन प्रशंसा कर रहे थे।

अर्जुन सोच के सागर में डुबकियां लगाते हुये चला जा रहा था- गुरूदेव ने तो कहा था अर्जुन तुमसर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगे। कहां गया गुरूदेव का वह वचन ? यदि गुरूदेव यह आशीर्वाद प्रदान न करते तो मैंने कौन सा उनसे यह वरदान मांगा था ? उस दिन गंगा में जब उनकी जांघ ग्राह ने पकड़ ली, उनकी रक्षा करना मेरा धर्म था। लक्ष्यबेध तो गुरूदेव ने ही मुझे सिखाया था। मैंने तो अपने कर्तव्य का पालन किया। उनके सिखाये अस्त्र से ही उनकी रक्षा हुई है। गुरूदेव ने सभी के समक्ष यह घोषित करके उचित नहीं किया। जब कौरवों कों इस बात का पता चलेगा कि मुझसे श्रेष्ठ धनुर्धर आचार्य द्रोण का ही कोई अन्य शिष्य भी है,.....तो उस स्थिति में मेरा सम्मान कहां शेष रह जायेगा ? कितना बिस्मय भरा करतब है उस भील बाल का कि बाण इस भाव के मारना कि श्वान के मुख में कोई खरोंच भी नहीं आने पावे। .....कितना प्रवीण है वह धनुर्धर !उसके समक्ष तो मैं अपने आपको अक्षम अनुभव कर रहा हूँ । गुरूदेव से मुझे पूछ ही लेना चाहिये कि गुरूदेव आपने ऐसा क्यों कह दिया ?’’

इसी सोच में अर्जुन गुरूदेव के समक्ष उपस्थित हो गया। द्रोणाचार्य ने आखेट से वापस आये शिष्यों से उल्लास में पूछा, ’’प्रिय शिष्यों , कैसा रहा आपका आखेट ?’’

सभी अपने अपने आखेट के अनुभव सुनाने लगे। दुर्योधन और दुःशासन बढ़ चढ़ कर अपने आखेट के अभियान की कहानी कहने लगे। कौरव देख रहे थे पाण्डवों की मुखाकृति पर उल्लास नहीं हैं। उन्होंने सोचा,हमारी तरह आखेट में सफल नहीं रहे होगे इसलिये इन सबके मुख से उल्लास चला गया है। वे और ज्यादा बढ़ कर अपनी-अपनी वीरता की कहानी कहने लगे। फिर सब के सब गुरूदेव से आज्ञा लेकर चले गये।

अगले दिन की बात है, दैनिक अभ्यास के बाद दोपहर होने के पहले ही कौरव बंधु जा चुके थे, केवल पाण्डुपुत्र मौजूद थे । वे सब उदास थे, विशेषकर अर्जुन किसी मनस्ताप में था ।

अर्जुन की मुखाकृति से उसके भाव द्रोणाचार्य से छिपे नहीं रहे। बोले, ’’अर्जुन, आज तुम प्रसन्न नही दिख रहे हो।’’

अर्जुन ने तत्क्षण उत्तर दिया, ’’गुरूदेव, आपने मुझे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीष देकर उचित नहीं किया। लोग कहते है कि आपका आशीष कभी मिथ्या नहीं हो सकता।’’

द्रोणाचार्य अर्जुन के मुख से ऐसी अनहोनी शब्दावली सुनकर आश्चर्य चकित रह गये। अपने को सम्हालते हुये बोले, ‘‘अर्जुन, मैं सत्य कहता हूॅ संसार में मेरे शिष्यों में तुमसे श्रेष्ठ कोई धनुर्धर न होगा।’’

अर्जुन के मुख से ष्शब्द निकले, ‘‘किन्तु.....’’

बात को द्रोणाचार्य ने लगभग छीन कर आगे बढ़ाया- ''वत्स, तुम्हें मेरे आशीष पर सन्देह ! बात क्या है ?शीघ्र कहो !''

यह सुनकर अर्जुन को पूरी बात कह देना अनिवार्य लगा, बोला, ''गुरूवर, घने वन में आज जब हम आखेट में तन्मय थें, हमारा प्रिय श्वान हमसे बिछुड़ गया। जब हमारी तन्मयता कम हुई तो हमें अपने श्वान का ध्यान आया। हम श्वान को खोजने लगे। खोजते खोजते कुरूराज्य की दक्षिण सीमा पर पहुँच गये। वहां जाकर वह हमें मिल गया। लेकिन एक आश्चर्य था गुरूदेव कि किसी ने बाणों से उस श्वान का मुंह इस प्रकार भर दिया था कि उसमें किन्चित भी स्थान शेष नहीं था। मैने वे बाण उसके मुख से निकाले हैं, ये रहे वे बाण।''

अर्जुन ने श्वान के मंुह से निकाले गये बाणों को आचार्य की ओर बढ़ा दिया। आचार्य वे बाण हाथ में लेकर उनका निरीक्षण करने लगे। वे बाण सामान्य से बांस की छीपटों के बने हुये थे। अर्जुन ने बात आगे बढ़ाने के उद्देश्य से कहा, ''गुरूदेव, हमने उस बाण मारने वाले की खोज की।''

आचार्य द्रोण ने व्यग्र होकर प्रश्न कर दिया, ''ऐसा धनुर्धर इस धरा पर कौन है ? और कहां है?''

यह प्रश्न सुनकर अर्जुन बोला, ''गुरूदेव, वह धनुर्धर है निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य।''

आचार्य द्रोण ने झट से प्रश्न कर दिया, ''अरे ! वही एकलव्य जो कभी मुझसे शिक्षा ग्रहण करने आया था। मैं तुम क्षत्रिय राजकुमारों के साथ कैसे उस निषाद पुत्र को सिखाता। इसी कारण मैंने उसे शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया था।''

अर्जुन ने बात को यहीं से पकड़कर कहा, ''गुरूदेव वह तो अपने आपको आपका ही शिष्य कह रहा है।''

यह सुनकर द्रोणाचार्य की आंखें बिस्मय और क्रोध से सिकुड़ गईं। वे बोले, ''मेरा शिष्य !''

अर्जुन ने उत्तर दिया, ''हाँ गुरूदेव आपका शिष्य।''

द्रोणाचार्य का झुंझलाता स्वर सुनाई पड़ा, '' इतना बड़ा झूठ? मैंने उस अधम को कब शिक्षा प्रदान की ? हमें उससे तुरंत मिलना चाहिये। चलिये, इसी समय उससे मिलने के लिये प्रस्थान करते हैं।''

और उसी समय व्यग्र से पाण्डव, दांत मिसमिसाते द्रोणाचार्य के साथ उस श्वान को लेकर एकलव्य से मिलने के लिये चल पड़े।

5

सतत् अभ्यास से ही मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाया है। निश्चित उद्देश्य को लेकर जो अभ्यास किया जाता है वह उसमें सफल होकर रहता हैं किन्तु हम अपने कार्य का सही लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाते हैं।

एकलव्य ने इसी सिद्धांत पर अपना लक्ष्य निर्धारित किया। वह उस पथ पर, मन को एकाग्र करके चलता रहा तो आज उसकी धनुर्विद्या ईर्ष्या का विषय बन गयी। उसने जो कुछ अर्जित किया, किसी की कृपा का फल नहीं बल्कि अपने श्रम और अभ्यास का परिणाम है। आज भारत वर्ष के इतिहास में श्रेष्ठ कहलाने वाले जन भी किसी के श्रम और अभ्यास से ईर्ष्या करेंगे किसी ने सोचा भी न होगा। और इसके बदले में ऐसा प्रतिकार.....?

एकलव्य के चित्त में तो यह विकार कभी आया ही न था कि कोई उससे ईर्ष्या करेगा। उसने तो उस दिन अपने आपको सबसे अधिक भाग्यशाली समझा जब गुरूदेव द्रोणाचार्य स्वयं चलकर उसके यहां आये। उस समय वह सोचने लगा- अरे मुझसे ही कहलवा दिया होता तो मैं ही उनके पास उपस्थित हो गया होता। आज गुरूदेव मेरे पास पधारे हैं। कैसे स्वागत करूँ मैं इनका ? कौन से शब्द इनके स्वागत में निस्सृत करूँ ?कौन-सा पात्र उनके आचमन के लिये भर लूँ ? कौन से कन्दमूल और फल उनके आहार के लिये लाऊँ ? आज सबकी सब चीजें गुरूदेव के स्वागत में तुच्छ लग रही हैं।

कुछ क्षणों तक एकलव्य यह सोचने के बाद भावशून्य हो गया। अब वह पुनः सोचने लगा, ''यह कैसे सम्भव है ! कहीं सतत ध्यान में लगे रहने से मुझे भ्रम तो उत्पन्न नहीं हो गया। गुरूदेव यहां क्यों आने लगे। यदि यहां आना होता तो उस दिन उससे मना ही क्यों करते ? मैं भी कैसा हूँ ? गुरूदेव यहां पधारे हैं, और मैं हूँ कि उनके अस्तित्व के बारे में सन्देह कर रहा हँू। धिक्कार है मुझे ! मुझे जो गुरूदेव पर सन्देह कर रहा हूँ। रे तू आज जो भी कुछ सीख पाया है उन्हीं की कृपा से। काश ! सामने यह मूर्ति न होती तो आज मुझे कौन सिखाता !''

जब-जब अभ्यास में कोई अवरोध उत्पन्न हुआ है तब तब गुरूदेव आपने अन्तर्मन में स्वयं उपस्थित होकर, प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया हैं। अन्यथा आपकी कृपा के बिना कैसे इतना सब सीख पाता। यह सोचकर गुरूदेव के श्री चरणों में उसने प्रणाम किया। बोला-''गुरूदेव, दण्डवत स्वीकार करें।''

0000

पांवों पर झुके भील युवक को दण्डवत करते देख आचार्य द्रोण का ब्राहमण हृदय जाग गया ।

द्रोणाचार्य ने अभ्यस्त भाव से आशीष दिया- ''यशस्वी भव।''

यह आशीर्वाद सुनकर अर्जुन को लगा- गुरूदेव ने इसे ये क्या वरदान दे दिया ? यशस्वी भव !

अब द्रोणाचार्य की दृष्टि उस मूर्ति की ओर गई। अरे ये तो मेरी ही प्रतिमा जान पड़ती है ! यह प्रतिमा यहां कैसे है, और क्यों है ?...उनने देखा कि उस प्रतिमा को सुन्दर वनफूलों से सुसज्जित किया गया था। यह देखकर उनकी नजरें आकाश की ओर उठीं और लगभग सबकुछ समझते हुये भी उन्होंने एकलव्य से प्रश्न कर दिया-"वत्स, अपना परिचय दो।"

एकलव्य रटी रटाई भाशा में अपना संक्षिप्त परिचय दिया, "मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र आप का शिष्य एकलव्य।"

यह सुनकर आचार्य ने आश्चर्य व्यक्त करते हुये व्यंग्य से कहा-"मेरा शिष्य !"

यह आश्चर्य बोधक प्रश्न सुनकर एकलव्य को कहना पड़ा-"हाँ, गुरूदेव आपका शिष्य।"

वे सोच के सागर में डूब गये-" इस के इस झूठ भरे उत्तर को सुनकर मैं यह क्यों नहीं सोच पा रहा कि मुझे इसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?"

उन्हे मौन देख एकलव्य ने अपनी दांयी तर्जनी से आचार्य की प्रतिमा की ओर संकेत किया-''गुरूदेव, आप यहां मूर्ति के रूप में बैठ कर मुझे सिखाते रहे हैं ।''

द्रोण को लगा कि कितना भोला ओर समर्पित युवक है यह भीलपुत्र ! इसे तो बिना किसी भेदभाव और बिना किसी जातिपांति के बंधनों के हर विद्या सिखाना चाहिए ।

हठात उसी समय उनकी दृष्टि अर्जुन पर की और गई। वह कातर भाव से हाथ जोड़े उपने समक्ष खड़ा था। उन्हें याद हो आया-"मुझे अपने शत्रु द्रुपद से बदला लेना है। अर्जुन के श्रेष्ठ धनुर्धारी होने का वरदान मिथ्या नहीं किया जा सकता। यदि यह भील श्रेष्ठधनुर्धर बन गया तो यह कभी भी द्रुपद से बदला नहीं ले पाएगा और मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या साबित होगी । मेरा दिया गया अर्जुन के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी होने का वह वरदान असत्य घोषित हो गया तो मेरा इस धरा पर क्या अस्तित्व शेष रह जाएगा। मेरी सारी कीर्ति धूल में मिल जायेगी ! मिथ्यावादी ब्राहमण कहलाऊंगा मै। उसी समय याद हो आई उस दिन की, ''जब अश्वत्थामा आटे का बनावटी दूध पीकर नाचने लगा था।''

विवश होकर उनने एक क्षण मे क्रूर निर्णय लिया। उनके मुँह से अनायास शब्द निकले- "तुम मेरे शिष्य हो तब तो नियमानुसार तुम्हें गुरू-दक्षिणा भी देनी चाहिये।"

यह कहकर उन्होंने देखा, एकलव्य भाव विभोर होकर कह रहा है- "गुरूदेव आज्ञा कीजिये।"

कुछ कहने के पहले द्रोणाचार्य ने अपने प्रियशिष्यों की ओर देखा । वे सब उत्सुकुता से उनकी ओर देख रहे थे । एकलव्य की आंखे प्रसन्नता के आवेग से अधखुली हुई उनके मुख की ओर ताक रहीं थीं, वह घुटनों के बल भूमि पर बेठा अपने हाथों की अंजलि बांधे हुआ था ।

द्रोण को चुप देख कर वह पुनः बोला-" गुरूदेव, आप गुरू दक्षिणा में मेरे प्राण भी मांगे तो भी मै अवज्ञा नहीं करूंगा ।''

आचार्य के मुंह पर व्यंग्य झलका-" प्राण भी !"

"हां, गुरूदेव प्राण भी !" दृड़ स्वर से शिष्य के स्वर निकले, उसको कहां आशंका होगी कि कभी कोई गुरू किसी शिष्य से प्राण या प्राण जैसी ही कोई चीज मांग सकता है ।

एकलव्य ने देखा कि द्रोणाचार्य ने पहले आसमान की ओर ताका है फिर जमीन की ओर और फिर अपने शिष्य अर्जुन की ओर । फिर उनने आंख मूंदी ओर नये वृक्ष पर बिजली सी गिराते द्रोणाचार्य के मुँह से शब्द निकले- "गुरू-दक्षिणा में अपने दांये हाथ का अंगुष्ठ दो। मुझे स्वीकार होगा, तुम मेरे सच्चे शिष्य हो।"

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि एकलव्य गुरूभाव में पूर्णरूप से भावाभिभूत हो गया। उसने अपने तरकश में से एक तीखे फलक का बाण लिया और बांये हाथ से फलक को कस कर पकड़ लिया फिर उस तीक्ष्ण बाण के फलक से सभी के देखते देखते अपना दांए हाथ का अंगुष्ठ खच्च से काटकर गुरूदेव के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया।

....और देखने वाले तो जेसे जड़ हो कर रह गये । स्वयं द्रोणाचार्य भी अविश्वसनीय दृष्टि से एकलव्य के रक्तरंजित दांये हाथ और उससे बहती रक्त की धार को देखते रह गये ।

पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर ऐसी अद्भुत गुरू-दक्षिणा को देखकर ठगे से रह गये। उन्होंने ऐसा श्रेष्ठ भावुक शिष्य कभी नहीं देखा था। वे उस श्रेष्ठ धनुर्धारी, दिव्य शिष्य की मन ही मन प्रशंसा करने लगे।

धर्मराज सोच में पड़ गए- "कैसा विचित्र और पागल शिष्य है ? एक क्षणको भी न तो आज्ञा पर विचार किया न कोई प्रतिप्रश्न किया । अपने प्रति कैसा निर्मम व्यक्ति है यह ? ओर हमारे गुरूदेव...? सचमुच गुरूदेव ने यह ठीक निर्णय नहीं लिया।

सहसा युधिष्ठिर को अपना ध्यान आया...मैं भी तो चुपचाप खड़ा यह सब देखता रहा । आने वाला इतिहास क्या कहेगा ? कैसा धर्मभीरू था युधिष्ठिर, जो एक श्रेष्ठ गुरूभक्त के श्रम की रक्षा नहीं कर सका। हालांकि एकलव्य की भी त्रुटि है, ये कैसी गुरूभक्ति है ! ये कैसा गुरूभाव है !

सहसा उनके मन मे ंदबा अर्जुन के प्रति स्नेह का भाव जाग उठा । उनके मन ने पलआ खाया- इतना अवकाश ही कहां मिल सका कि मैं या कोई और आगे बढ़कर एकलव्य को रोक पाता । वो तो असामान्य श्रेणी का मनुज जान पड़ता है, अपने प्रति भला कोइ्र ऐसा निर्मम भी होता है भला ! झट से बाण निकाला और खच्च से अपना अंगुष्ठ काट डाला । हे हरि ! कैसा युवक है यह !..... खैर अब क्या हो सकता हैं। होनी को कौन टाल सका है ?

यह सोचकर उनका मन इस प्रसंग को अपने सामने से हटा कर स्वयं को परहहंस स्थिति में ले जाने का प्रयास करने लगा।

गुरूदेव द्रोणाचार्य भी उसकी निष्ठा को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सोचने लगे- "यह मेरे मुँह से अनायास क्या निकल गया ? क्यों कह दिया इससे यह सब ? अंगुष्ठ का दान लेकर मैंने अच्छा नहीं किया। यदि द्रुपद से अपनी शत्रुता का भाव चुकता करना था तो इसको द्रुपद से युद्ध करने के लिये भेज देता। इससे मेरा यश गौरव ही बढ़ता।"

आत्मचिन्तन के क्रम में आचार्य द्रोण के इस विचारों ने पलट खाई कि वैसे ठीक ही रहा। इसके सर्वश्रेष्ठ होने की पुष्टि युगों-युगों तक के लिये कर दी गई। अर्जुन के समक्ष इसकी गिनती कौन कहां करता ?अब इसकी गिनती श्रेष्ठ धनुर्धारियों में होगी। अब अर्जुन द्वितीय श्रेणी के धनुर्धारियों में गिना जायेगा। यदि यहघटना न घटती तो इसकी गिनती कहीं न होती। आज तक कितने एकलव्य धनुर्धारी हुए होंगे, कहां गिनती हो रही है उनकी ? जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब तो यों ही मन केा समझाने के सिवा कोई विकल्प नहीं है।"

भावावेश अथवा क्रोध में जो होना होता है हो गया। अब लोगों को जो कहना है कहें। इस प्रकार बिना सोचे समझे जो काम हो जाते हैं उनके लिये पश्चाताप के अलावा कोई विकल्प शेष नहीं रहता।

वे सोचने लगे- "मैं तो बड़ा विवेकशील था फिर क्षत्रिय राजकुमारों को शिक्षा देना मुझे अपना धर्म लगा। क्यों लगा यह धर्म मुझे अपना ! क्यों उस दिन इस निषाद के पुत्र को शिक्षा देने से इन्कार कर दिया ? संभवतः उस दिन मैं राजदबाव में था।....लेकिन आज यहां कौन से दबाव ने यह सब करवा दिया ? संभवतः अपने वचन पालन के लिये। मैंने सोचेविचारे बिना, अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी होने का वचन क्यों दे दिया ? उस दिन यह

क्यों नहीं सोच पाया था कि कल कहीं इससे श्रेष्ठ धनुर्धारी निकल आया तो उस समय मेरे वचन का क्या होगा ? कहीं न कहीं तो चिन्तन में चूक हुई है।" यह सोचते हुए द्रोणाचार्य की मुद्रा अन्यन्त गम्भीर हो गई।

अर्जुन ने देखा कि गुरूदेव इस घटना से प्रसन्न नहीं हुए, गम्भीर हो गये, सोच के सागर में डूब गये।मैने गुरूदेव को अपने सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी होने के वरदान के सम्बन्ध में, क्यों स्मरण करा दिया ? मैंने यह अच्छानहीं किया। लोग मेरे बारे में क्या क्या नहीं कहेंगे, "अर्जुन इतना बड़ा धनुर्धर यों ही छल से बन गया होगा। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनने के लिये एकलव्य से मुझे और तीव्र अभ्यास करना था। उसकी श्रेश्ठता क प्रश्न, उसके अंगुश्ठ कटाने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि इस बहाने गुरूदेव से कुछ और नये गुण सीखने से था।किन्तु अब तो सब कुछ उलटा पुलटा हो गया। इस तरह संसार में सर्वश्रेष्ठ बनने का अब नया पंथ चलेगा।एकलव्य का अंगुष्ठदान आज मेरे हृदय को विदीर्ण कर रहा है। लोग कहेंगे मुझे गुरूदेव की बेबशी का इस तरहलाभ नहीं उठाना चाहिये। आज के बाद मेरी गिनती कहां होगी ? जीवन में निश्चय ही कोई अनहोनी घटना घटने वाली है। ऐसी घटनाएँ कुछ न कुछ नये संकेत, नये सुझाव देने के लिये ही धरती पर घटतीं हैं। हम हैं कि

किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। मैंने जो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का सपना सँजोया, आज वह धूल धूसरित हो गया।"

सभी देख रहे थे एकलव्य के अंगुष्ठ से अभी भी खून वह रहा है। गुरूदेव द्रोणाचार्य का आदेश सुनाईपड़ा- "वत्स एकलव्य।"

"जी गुरूदेव, आज्ञा कीजिये।"

"वत्स, अंगुष्ठ से जो रक्त का स्राव हो रहा है इसका उपचार कर लो।"

यह सुनकर एकलव्य के मुँह से शब्द निकले- "गुरूदेव हम भील लोग ऐसी जड़ी जानते हैं कि एक क्षण में ही यह रक्त का स्राव बन्द हो जायेगा, लेकिन गुरूदेव इस रक्त को बह जाने दीजिये। इसके स्राव से मुझे आनन्द आ रहा है।"

पाण्डव इस बात के मनचाहे अर्थ लगाने लगे। द्रोणाचार्य उसे सान्त्वना देने लगे- "वत्स, गुरू दक्षिणा देने के पश्चात् दुखी नहीं होना चाहिये।"

एकलव्य ने उन्हें संतुश्ट करने के लिये उत्तर दिया- "गुरूदेव, दुखी होकर अपनी सारी श्रम साधना को मिट्टी में नहीं मिलाना चाहता। मैं तो आज इतना खुश हूँ कि अपने गुरूदेव की इच्छा के लिये इतना तो बहुत ही कम है यदि आपने मेरा यह जीवन ही मांगा होता तो आपके श्रीचरणों में इसे भी हंसते हंसते अर्पित कर देता। गुरूदेव के श्रीचरणों में तो जीवन की सारी सम्पदा अर्पित कर देने के बाद भी कम ही रहती है। गुरूदेव, अदृश्य में आपने जो कृपा मुझ पर की है उतनी तो .....।" वाक्य को पूरा किये बिना ही एकलव्य उठा। झाड़ियों में से वह एक जड़ी ले आया और उसका लेपन उस कटे हुए अंगुष्ठ पर कर लिया। एक क्षण के बाद वे देख रहे थे,

रक्त स्राव पूरी तरह बन्द हो गया।

पाण्डवों का प्रिय श्वान कूँ-कूँ करके कभी एकलव्य के चरणों में लोटता कभी अर्जुन के सामने जाकर अपनी पूँछ हिलाने लगता। लग रहा था वह अपनी सारी गलती स्वीकार कर रहा था।

एकलव्य के चरणों में उसका लोटना उन्हें खल रहा था। पाण्डव उसके इस अभिनय को अनदेखा करने लगे। उनके देखते-देखते, वह श्वान जहां एकलव्य का खून गिरा था उसमें लोट पोट होने लगा। पाण्डव विवश थे। एकलव्य के रक्त में श्वान का लिप्त होना उन्हें असहनीय हो रहा था। वे अनुभव कर रहे थे- "वह श्वान ही नहीं, हम सब ही आज एकलव्य के खून में लथपथ हैं।"

अब वे सब भारी मन से लौट रहे थे।

वापस जाते हुए पाण्डवों पर अचानक आ रही वेणु की दृष्टि गई..... इतने लोगों का बिना अनुमति के वेणु की निजी अभ्यास स्थली में प्रवेश! मन में शंका उत्पन्न हो गई। उसने अपने धनुष से बाण उतारा और एकलव्य के पास आकर खड़ी हो गई।

वह देख रही थी उसका अंगुष्ठ कटा पड़ा है। चेतना शून्य एकलव्य आचार्य- द्रोण को जाते हुये अपलक देख रहा है। वेणु की उपस्थिति का भी उसे आभास नहीं हुआ। वेणु अधीर हो उठी और अकुलाकर एकलव्य से प्रश्न किया- "युवराज यह कौन थे ?"

एकलव्य ने वेणु की ओर देखते हुये मुस्कराकर कहा- "गुरूदेव आये थे।"

वेणु ने व्यग्र होकर कहा-"मुझे भी बुला लेते। मैं भी उनके दर्शन कर लेती।"

एकलव्य ने उत्तर दिया- "उस समय आप अभ्यास में लीन थीं इधर साक्षात् गुरूदेव सामने हो तो कौन भाव विभोर नहीं होगा, कौन विचार शून्य नहीं हो जावेगा ?"

वेणु की दृष्टि एकलव्य के रक्तरंजित हाथ पर गई तो वह चौंक कर आगे लपकी । एकलव्य का कटा अंगूठा और बिना अंगूठे की अधूरी सी हथेली देख कर वह द्रवित हो उठी । लगभग रूआंसी होती वेणु ने एकलव्य से प्रश्न किया- "युवराज, लेकिन आपका यह अंगुष्ठ, मैं कुछ समझी नहीं ?"

एकलव्य मुस्कराया, ''यह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर शिष्य होने का प्रमाणपत्र है।''

वह क्रोध में आते हुये बोली- "कृपया पहेलियां न बुझायें। साफ साफ कहें क्या हुआ ?"

"क्या कहूँ वेणु, एक दिन पूर्व पाण्डवों का वह श्वान जो अभी भी उनके साथ था, यहां आकर भांेक-भोंक कर मेरे लक्ष्य बेधन में व्यवधान उत्पन्न करने लगा। मैंने बिना फलक के बाणों से उसका मंुह बन्द कर दिया। वह यहां से भाग गया लेकिन एक प्रहर के पश्चात वह पाण्डवों को साथ लेकर आया। उन्होंने यहां आकर मेरा परिचय पूछा। मैंने द्रोणचार्य के शिश्य के रूप में अपना परिचय बतला दिया तो वे वापस चले गये। वेणु, आप भी इन दिनों अभ्यास में इतनी तल्लीन रही हो कि मुझे यह बात आपसे कहने का अवसर ही नहीं मिल पाया, इधर मैं भी अभ्यास में लगा रहा। आज उन्हीं पाण्डवों के साथ श्री गुरूदेव यहां पधारे।"

एकलव्य कुछ क्षणों तक बात कहने से रूका।

बात में व्यवधान देखकर वेणु बोली-"आचार्य द्रोण का आना और अंगुष्ठ का कटना, मैं कुछ समन्वय नहीं बिठा पा रही हूँ। आपको पूरी बात स्पष्ट करनी पड़ेगी।"

उसने बात पूरी की- "वेणुSS, आचार्य ने मेरा परिचय पूछा। मैंने कह दिया कि मैं आपका शिष्यनिषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य !मेरी यह बात सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ, "मेरा शिष्य।"

"हाँ गुरूदेव आपका शिष्य।"

" वे बोले वत्स यदि तुम मेरे शिष्य हो तो तुम्हंे गुरूदक्षिणा देनी होगी।"

मैंने आज्ञा मांगी- "आदेश करें।'

''उन्होंने गुरूदक्षिणा में मेरा ये दांये हाथ का अंगुष्ठ मांग लिया।"

'' और वेणु मैंने गुरूदक्षिणा देने में देर नहीं की। यह अंगुष्ठ काटकर उनके श्री चरणों में अर्पित कर दिया।

यह सुनते हुये वेणु सिसक-सिसक कर रो पड़ी। बोली- "युगों युगों में ऐसी भावुकता कम ही देखने को मिलती हैं।"

एकलव्य ने उसे सान्तवना दी, "गुरूदेव ने केवल दांये हाथ का अंगुष्ठ मांगा था यदि वे मेरा जीवन मांगते तो वह भी अर्पित कर देता।"

वेणु गम्भीर होते हुये बोली- "वे आपसे आपका जीवन मांगते। यह मांगना और अर्पित कर देना अधिक उचित होता लेकिन युवराज बिना अंगुष्ठ के कहो अब आपका क्या अस्तित्व शेष रह गया है?"

यह सुनकर एकलव्य को लगा- वेणु तो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर से ही विवाह करना चाहेगी। अब मै सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर नहीं रहा। इसीलिये यह मेरे अस्तित्व को नकार रही है।

यही सोचकर एकलव्य को विवश होकर कहना पड़ा- "क्षमा करें वेणु जी, अब मैं आपके योग्य नहीं रहा।"

वेणु ने अपने निर्णय से उसे अवगत कराया, "युवराज, गुरूदेव ने आपकी यह दिव्य परीक्षा लेकर घोषित कर दिया हैं कि आपके समान कोई दूसरा धनुर्धर अब इस संसार में नहीं है। अर्जुन की तुलना में आपकी श्रेष्ठता कम करने के लिये ही गुरूदेव को यह कदम उठाना पड़ा हैं।"

एकलव्य ने भी अपना निर्णय सुनाया, "जो भी स्थिति हो, अब तो मेरा जीवन अस्तित्व हीन हो गया है। मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि पाण्डवों को मेरा हस्तलाधव शोभनीय नहीं लगा। वे ही गुरूदेव को मेरे पास लेकर आये थे। अब मैं धनुर्विद्या में पाण्डवों के समान नहीं रहा। वेणु जी अब तो आपको अपने विवाह के लिये अर्जुन का ही चयन करना पड़ेगा।"

एकलव्य की यह बात सुनकर वेणु ने उसे समझाया, "युवराज, अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होता तो आपकायह अंगुष्ठ गुरूदक्षिणा में न लिया गया होता। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित होने के लिये आपको अनेक परीक्षायें देनापड़तीं। अब तो आपकी परीक्षा हो चुकी। आप युगों युगों के लिये संसार के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित कर दियेगये। अब सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन की गिनती आपके पश्चात होगी। युवराज, मुझे मेरा लक्ष्य प्राप्त हो गया है।''

यह बात सुनकर एकलव्य ने कहा- "लेकिन मेरा लक्ष्य तो मुझसे दूर चला गया है।"

वेणु ने युवराज को आश्वस्त किया, "युवराज, आप भूल रहे हैं। पर्वत पर पैर नहीं दृढ संकल्प चढ़ा करते है।"

उसकी यह बात सुनकर तो एकलव्य को लगा- "चिन्ता की बात नहीं है। वेणु ने सकारात्मक सोच का बिन्दु मेरे समक्ष उपस्थित कर दिया है। मैं आज भी सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हूँ। विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर।"

00000

6

वेणु के पिता श्री ग्रामप्रधान चन्दन को आज याद आ रही है उस दिन की, जब एकलव्य रात्रि विश्राम हेतु पुत्री वेणु की अभ्यास स्थली में आकर रूके थे। उस दिन वेणु ने उन्हें लक्ष्यबेध कर दिखलाया था। वेणु के लक्ष्यवेध से प्रभावित होकर ही वे अभ्यास के लिये यहां आये हैं। उन्हें ज्ञात हो गया, मेरी पुत्री सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर से ही विवाह करेगी। वेणु के कहने से ही मैंने एकलव्य से मिलने का प्रयास नहीं किया। आज के पूर्व पाण्डव भी तो एकलव्य से मिलने के लिये आये थे। यह बात हमें, अपने ग्राम के लोगों से ज्ञात हो गई थी। हमने सोचा,अर्जुन महान धनुर्धर है। दोनों धनुर्धर, परस्पर मिलना चाहते होंगे। ये कैसा भ्रमित युवक है जो आचार्य द्रोण की मूर्ति के सहारे अभ्यास में लगा हैं। अभी एक चरवाहे ने सूचित किया है कि आचार्य द्रोण स्वयं पाण्डवों के साथ एकलव्य से मिलने के लिये आये थे, सुना है उससे मिलकर लौट भी गये। उनका आगमन यहां कैसे हो गया ? वे चाहते तो एकलव्य को ही हस्तिनापुर बुला लेते। उनका यहां आना संदेह उत्पन्न कर रहा है। चलकर देखना चाहिये। वेणु भी विचित्र है कुछ बताती ही नहीं। वैसे भी वे दोनों युवा हैं, दोनों को मिलना जुलना ज्यादा अच्छा नहीं। उसी आश्रम में दोनों धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे हैं। यह सोचते हुये ग्रामप्रधान चन्दन एकलव्य से मिलने के लिये उठ खड़े हुए।

यह देखकर ग्राम के कुछ अन्य लोग भी उन्हीं के साथ चले।

जिस समय वे वेणु के पास पहुँचे, वेणु और एकलव्य वार्तालाप में व्यस्त थे। पिता श्री के आने की आहट पाकर दोनों का चित्त उनकी ओर चला गया। अंगुष्ठ का कटा हुआ भाग आचार्य द्रोण की मृण्मूर्ति के समक्ष पड़ा था। साथ आये ग्रामीण जन यह सब देखकर ग्रामप्रधान चन्दन के मुख की ओर देखने लगे। चन्दन चिन्तन में थे- गुरूदेव द्रोणाचार्य का यहां पाण्डवों के साथ आना। अंगुष्ठ का कटना। हस्तिनापुर की राजनीति!.....उनकी समझ में सब कुछ आ गया

सोचते हुये वे बोले- "आचार्य द्रोण ने पहिले तो निषादजाति के इस युवराज को शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। जब यह अभ्यास के बल पर परिपूर्ण हो गया तो अर्जुन जैसा धनुर्धर इससे ईर्ष्या करने लगा। अन्यथा अंगुष्ठ के कटने का प्रश्न ही खड़ा नहीं था। आचार्य द्रोण और पाण्डवों की महानता वन्दनीय है, मैं तो हस्तिनापुर की राजनीति से पूर्व में ही परिचित हूँ। यदि ऐसा नहीं होता तो निषादराज पांचाल नरेश द्रुपद के निकटस्थ लोगों में न होते। द्रोणाचार्य द्रुपद से शत्रुता का भाव रखते हैं। क्या बिगाड़ा हैं द्रोण का द्रुपद ने ?विद्यार्थी जीवन में कौन किससे क्या नहीं कह देता ? उन भावों को पकड़कर शत्रुता का भाव बना लेना। लगता है आचार्य द्रोण का मस्तिष्क विचार शून्य हो गया। जैसे वे हैं वैसी ही शिक्षा अपने शिष्यों को दे रहे हैं। शिक्षा का

भाव, जहां एक दूसरे की प्रगति न हो, बल्कि एक दूसरे की अवनति का भाव आ जावे। अपने आचरण का भाव ही तो आचार्य द्रोण अपने शिष्यों में सम्प्रेशित कर रहे हैं।

उनकी यह बात सुनकर एक वृद्ध मनीराम काका बोले- "प्रधान जी, शिक्षा व्यवस्था तो इस देश की वर्तमान समय में अवन्तिका के सान्दीपनि आश्रम की ही उत्तम है। इस शिक्षा व्यवस्था ने श्री कृष्ण जैसे व्यक्तित्व को जन्म दिया हैं। वे देश की राजनीति में एवं आत्मदर्शन में अपना गहरा स्थान बनाते जा रहे हैं।"

चन्दन ने अपने अनुभव की बात कही, "आप ठीक कहते हैं काका मुझे तो द्रोण की इस शिक्षा व्यवस्था में त्रुटियां ही त्रुटियां दिखाई दे रहीं हैं। सुना है कौरव और पाण्डव आपस में द्वेष भाव रखने लगे हैं। जहां की शिक्षा व्यवस्था द्वेष उत्पन्न करे, ऐसी शिक्षा व्यवस्था को भीष्म पितामह ने बन्द नहीं किया तो किसी दिन ये कौरव और पाण्डव विनाश के मुहाने पर खड़े होंगें।"

एकलव्य उनकी ये बातें चुपचाप सुनता रहा। उसका चित्त गुरूभाव की पराकाष्ठा अनुभव करके निवृत हुआ था इसी कारण यह सब सुनने में वह पीड़ा का अनुभव कर रहा था। किन्तु वेणु कहीं बंधित नहीं थी। उसका चित्त तो पिता की बातों का समर्थन कर रहा था।

एकलव्य समझ गया- वेणु और उसके पिता मेरे इस गुरूभाव से कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। इसलिये एकलव्य ने अपना निर्णय सुना दिया- "ग्रामप्रधान जी आप चिन्ता नहीं करें। अब तो अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हैं। आपकी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ ही सम्भव हैं।"

वेणु ने मर्यादा की चिन्ता किये बिना ही कहा, "ईर्ष्या के बल पर सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले अर्जुन से मेरा विवाह सम्भव नहीं हैं।"

वेणु की भावना को उसके पिता समझते हुये बोले, "युवराज यदि वे सर्वश्रेष्ठ होते तो अंगुष्ठ को गुरूदक्षिणा में लेने की आवश्यकता नहीं थी। वेणु उत्कृश्ट धनुर्धर है। वह समझ रही हैं कौन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हैं कौन नहीं ?''

एकलव्य को स्वीकारना पड़ा- "तात, वेणु ने अपने मन्तव्य से मुझे अवगत तो करा दिया हैं किन्तु अब मेरा क्या अस्तित्व शेष रह गया हैं ?"

यह सुनकर चन्दन ने कहा- "सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात यदि कुछ घटितहो गया तो इस पर किसी का क्या आरोप ? सम्पूर्ण विश्व आपको ही सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर स्वीकार करता रहेगा।"

एकलव्य के मुख से निस्सृत हो गया- "मान्यता और सत्य में अन्तर होता हैं।"

''किन्तु युवराज, जनमानस में व्याप्त मान्यतायें परमसत्य का रूप धारण कर लेती हैं।"

ग्राम प्रधान ने चन्दन की एकलव्य ने बात काटी, ''तात आप यह मोह वश कह रहे है।"

यह सुनकर वेणु बोल़ी-"यदि यह बात मोहवश कह रहे हैं तो युवराज, मैं जीवन भर अविवाहित रहने को तैयार हूँ।"

एकलव्य को स्वीकारना पड़ा- "तात, निश्चय ही हमने सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हैं।"

उसकी यह बात सुनकर सभी की मुखाकृति पर दुख सुख की समान भावनायें एक साथ प्रगट हो रहीं थीं। कुछ ही क्षणों के उपरान्त वे एकलव्य को साथ लेकर बड़बनी ग्राम की ओर चल पड़े।

ग्राम प्रधान चन्दन ने ग्रामवासियों के परामर्श से निषादराज हिरण्यधनु के लिये पत्र लिखा-

निषादराज भीलाधिपति हिरण्यधनु जी महाराज,

ग्राम बड़बनी की आपकी प्रजा की ओर से प्रणाम स्वीकार हो।

आगे समाचार यह है कि हमारे युवराज एकलव्य हमारे ग्राम की सीमा में आचार्य द्रोण की मूर्ति के सहारे अभ्यास करने में लगे थे। एक दिन पाण्डवों का श्वान आकर, हमारे युवराज के लक्ष्यबेध में भोंक भोंक कर व्यवधान उत्पन्न करने लगा। हमारे युवराज ने बिना नोक के बाणों से उस का मुंह बन्द कर दिया। वह श्वान पाण्डवों के पास पहुँचा। पाण्डवों ने ऐसा धनुर्धर कहीं नहीं देखा था। सभी पाण्डव युवराज के पास आकर उनसे परिचय पूछने लगे। हमारे युवराज ने बता दिया-"मैं निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र आचार्य द्रोण का शिष्य एकलव्य हूँ।" युवराज की यह बात सुनकर सभी पाण्डव वापस चले गये। सुना है पाण्डवों में अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ

धनुर्धर है। उसे हमारे युवराज के लक्ष्यबेध से असहय पीड़ा होने लगी। उसने युवराज के लक्ष्यवेध के सम्बन्ध में, अपने गुरू आचार्य द्रोण को, यह सब बतला दिया होगा। पाण्डव आचार्य द्रोण को साथ लेकर युवराज एकलव्य

के पास आये। गुरूदेव द्रोणाचार्य ने एकलव्य से परिचय पूछा। युवराज ने अपना परिचय बतलाया- कि मैं आचार्य द्रोण का शिष्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र हूँ। यह सुनकर आचार्य द्रोण हमारे भावुक युवराज से गुरूदक्षिणा माँगने लगे। युवराज उनके अन्दर पनप रही भावना को नहीं समझ पाये। गुरूदेव द्रोणाचार्य ने हमारे युवराज से गुरूदक्षिणा में दांये हाथ का अंगुष्ठ मांग लिया। युवराज ने हँसते-हँसते अपना अंगुष्ठ द्रोणाचार्य के श्री चरणों में अर्पित कर दिया। हमने वह कटा हुआ अंगुष्ठ द्रोण की मृण्मूर्ति के समक्ष रख दिया हैं। आप आकर उसका अवलोकन कर सकते हैं।

इधर हमारी एकमात्र पुत्री वेणु ने प्रतिज्ञा कर ली है कि वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर से ही विवाह करेगी। वेणु भी धनुर्धर हैं। आप आकर उसकी परीक्षा ले सकते हैं। वह भी आँखों पर पट्टी बांधकर लक्ष्यबेध कर देती है। अंगुष्ठ को गुरूदक्षिणा में लेकर, गुरूदेव द्रोणाचार्य ने युवराज को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित कर दिया है। हम सभी आपके राज्य के ग्रामवासी चाहते हैं हमारी कन्या वेणु युवराज एकलव्य को वरण करे। इस मंगल वेला में पत्रवाहक के साथ ही आप बारात लेकर पधारने की कृपा करें जिससे वरण की प्रक्रिया पूर्ण की जा सके। हम सभी ग्राम बड़बनी के निवासी आपके दर्शन करने के लिये व्यग्र हैं।

चन्दन

ग्रामप्रधान

ग्राम- बड़बनी

जनपद- निषादराज्य

एक विशेष पत्र वाहक को इस पत्र के साथ निषादपुरम भेजा गया ।

00000

पत्रवाहक पत्र देकर तुरंत लौट गया था।

पत्र पाकर निषादराज अकुला उठे। इच्दा हुई कि दौड़कर अपने पुत्र के पास पहुंच जावें । लेकिन एक राज प्रमुख को ऐसी अकुलाहट शोभा नहीं देती थी अतः चुप रह गये । बस मन्त्री चक्रधर से विचार विमर्श कर अपने राज्य के ग्रामप्रधानों की सभा का आवाहन किया।

दूसरे दिन सभा संपन्न हुई। सर्व सम्मति से निश्चय किया गया कि पहले युवराज एकलव्य का विवाह किया जावे,तत्पश्चात् राज की नीतियों के सम्बन्ध में इस अंगुष्ठदान की व्यथा को रखा जावे, जिससे दूध का दूध और पानी का पानी किया जा सके। देश की सम्पूर्ण भील जातियों के ग्रामप्रधानों के समक्ष, इस भावना की सूचना भेज दी जावे। जिससे उस सभा में सब एकजुट होकर अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें।

उसी सभा में महारानी सलिला ने बारात के साथ चलने का मन्तव्य प्रगट किया। जिसका सभी ने समर्थन कर दिया।

तीसरे दिन सजधज कर बारात चल पड़ी और सांझ तक ग्राम बड़बनी के निकट जा पहुँची। निषादराज की व्यवस्था उसी बगीचे में की गई, जहाँ एकलव्य ने अभ्यास किया था। बगीचे में प्रवेश करते ही निषादराज हिरण्यधनु आचार्य द्रोण की मृण्मूर्ति के समक्ष उपस्थित हुये। वे देख रहे थे एकलव्य का कटा हुआ अंगुष्ठ जो आचार्य द्रोण की मूर्ति के समक्ष एक पत्ते पर रख़ा है। यह देखकर उन्हें आचार्य द्रोण के इस कृत्य पर क्रोध आ गया। बड़ी देर तक मौन साधे उस क्रोध के कड़वे घूंट कण्ठ से नीचे उतारते रहे।

उसी समय एकलव्य ने उपस्थित होकर पिताश्री के श्री चरणों में प्रणाम किया। उनकी दृष्टि एकलव्य के दांये हाथ के अंगुश्ठ की ओर गई। उस कटे हुए भाग पर जड़ी बूटियों का लेपन था। निषादराज ने एकलव्य को अपने हृदय से लगा लिया। उसकी पीठ हाथ फेर कर थपथपाते रहे।जब एकलव्य माता श्री के पास पहूँचा। माताश्री की आँखें उसे देखने के लिये व्यथित हो रहीं थीं। माताश्री सलिला उसके कटे हुये अंगुष्ठ के भाग को देखकर आचार्य द्रोण की भर्त्सना करने लगीं- “आचार्य द्रोण और पाण्डव बड़े भारी धर्मात्मा बनते हैं उन्हें मेरे

पुत्र की धनुर्विद्या छीनने में लज्जा भी नहीं आई। वत्स, तुम भी कितने भावुक हो, वर्षो से अर्जित श्रम, तुमने एक क्षण में भावना में बहकर अर्पित कर दिया। उनका तो इस से कोई सम्बन्ध न था। सम्बन्ध तो तुमने अपने मन से जोड़ लिया। मन से तो हम किसी से भी कुछ जोड़ तोड़ लेते हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं कि यह वस्तु उन्हीं की हो गई। जब से मैंने यह सब सुना है मुझे तो तुम्हारी विवेकहीन भावुकता पर सोच आ रहा हैं।"

एकलव्य ने माता श्री को सांत्वना दी- "माता श्री यह तो अंगुष्ठ ही कटा है। मेरा एक हाथ भी कट गया होता तो भी मैं जीवन से हारने वाला नहीं हूँ।"

उसकी यह बात सुनकर वह गम्भीर गई। उनने देखा कि आचार्य द्रोण के इस कार्य को लोग चाहे जिस दृष्टि से देखें, चाहे प्रशंसा करें अथवा भर्त्सना करें।एकलव्य सब कुछ सुनता रहता है। इस पर वह कोई प्रतिक्रिया भी व्यक्त नहीं करता है। वह समझ रहा है-"अब मैं किस किस का मुंह बन्द करूं ? जिसके मन में जैसा आयेगा वह अपनी दृष्टि से इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करेगा ही।"

उधर आज रात्रि हिरण्यधनु को नींद नहीं आ रही हैं उन्होंने अंगुष्ठदान की बात सुनी है पीड़ा तो उसी समय से उनके मन में समाहित हो गई है। जब से मृण्मूर्ति के समक्ष एकलव्य का कटा हुआ अंगुष्ठ देखा है, यह वेदना और तीव्र हो गई है, विवाह की प्रसन्नता लुप्त है। वे जैसे ही आंखें बन्द करते हैं अंगुष्ठ का कटा हुआ भाग सामने आ जाता है। उन्हें याद आ रहीं है इतिहास के उन पृष्ठों की कथा जो एक बार उनके कुलगुरू ने हिमालय की कंदराओं से बाहर आकर उनके पिता को सुनाई थी और जिनमें निषादजाति का पुरातन इतिहास छिपा है।

.....सतयुग के प्रारम्भ में राज्य नाम की कोई चीज नहीं थी। उस समय न कोई दण्ड था और न दण्ड देने वाला। सारी प्रजा आपस में धर्म के नाते ही एक दूसरे की रक्षा करती थी। उसके पश्चात् लोग मोह में पड़ गये। संसार में जिस सनातन वेद वर्णित सहभाव ओर सहअस्तित्व का उललेख था, उसे लोभ मोह के दूषित भावों ने नष्ट कर डाला। इससे धर्म नष्ट हो गया। मानव के हित में कोई उपाय खोजा जाने लगा। उसके पश्चात लोगों ने उपनी बुद्धि से नीतिशास्त्र की रचना कर डाली। उसमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का वर्णन किया गया। इस नीतिशास्त्र की रचना के पश्चात मृत्यु नामक मानस पुत्री सुनीथ से राजा अंग के द्वारा वेन का जन्म हुआ। वह रागद्वेस के आधीन होकर प्रजा में अर्धम का प्रचार करने लगा। नहीं नहीं यह सत्य नहीं है, राजा वेन ने उस नीतिशास्त्र के अनुसार शासन करना चाहा। उसने ब्राह्मणों को दण्ड से ऊपर नहीं माना। उसने सभी को समान समझा और दण्ड के आधीन जाना। यह देख वेदपादी ब्राह्मणों ने उसे मार डाला। देश में तब और अधिक अराजकता फैलने लगी। यह देखकर उन ब्राह्मणों ने उसके वांये और दांये भाग का मंथन किया। नहीं नहीं यह कहानी भी प्रतीक के माध्यम से कही गई है, सच तो यह है कि उस वेन नामक राजा के दो पत्नियाँ थीं एक राज्य के वाम भाग की पत्नी, दूसरी राज्य के दांये भाग की पत्नी। उन ब्राह्मणों ने वाम नामक पत्नी के संसर्ग से पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्र ने भी घोषणा कर दी कि वह इन ब्राह्मणों के अस्तित्व को दण्ड से उपर मानने के लिये तैयार नहीं है तो ब्राह्मणों ने उसे निषीद अर्थात तुम राज्य के योग्य नहीं हो ऐसा कहकर राज्य से पृथक कर दिया। इस तरह हम निषादजाति का जन्म हुआ। उसके पश्चात वेन राजा की दूसरी पत्नी के संसर्ग से पृथु नामक पुत्र ने जन्म हुआ। पृथु उन ब्राह्मणों, मुनियों के अनुसार राज्य कार्य करने के लिये तैयार हो गया। उसने उन ब्राह्मण मुनियों को दण्ड से ऊपर स्वीकार कर लिया। आगे चलकर यही संस्कृति आज तक फल फूल रही है।

"हमें गर्व है, हम राजा पृथु के बड़े भ्राता निषाद की सन्तान हैं।"यह सोचते हिरण्यधनु ने लम्बी स्वांस खींची और पुनः सोचने लगे, भीष्म पितामह जैसे ज्ञानी वहां बैठे हैं। उन्होंने आज तक इस इतिहास को इन कौरव और पाण्डवों और उनके गुरू द्रोणाचार्य को नहीं सुनाया। यदि यह इतिहास इन्हें सुना दिया होता तो उस दिन मेरे वत्स एकलव्य को निषादजाति का कहकर राजकुमारों के साथ शिक्षा देने से मना न करते। मुझे तो लगता है- आचार्य द्रोण को पूर्व से भी यह इतिहास ज्ञात नहीं होगा, अन्यथा वे ऐसा न करते। इन ब्राह्मणों ने मानव के इस सच्चे इतिहास को छिपाने का प्रयास किया है। राजा पृथु से पूर्व के इतिहास पर वे मौन रह जाते हैं यही इस भारत वर्ष का दुर्भाग्य है।

इस चिन्तन से उनके मन को किन्चित विराम मिला। उन्होंने करवंट बदली। महारानी सलिला पास में ही लेटी हुई थीं। वे भी चिन्ता में डूबी सो नहीं पाई। वे अनुभव कर रही थीं कि निषादराज भी चिन्तन में हैं। यह सोचकर बोली-"स्वामी चिन्ता में हैं।"

हिरण्यधनु बोले-देवी आज चित्त इस बात की खोज में हैं कि हमसे चूक कहां हो गई हैं ?

“स्वामी हमसे चूक कहां हो गई है ?”

“देवी, हमसे चूक यहां हो गई कि हमने यह मान लिया उन्हें जो न्याय लगा है वह न्याय है और उन्हें जो अन्याय लगा है वह अन्याय है। इसी का दण्ड हमें आज भी भोगना पड़ रहा हैं।”

“स्वामी अर्धरात्रि व्यतीत हो गई है। प्रातः ही विवाह के कार्यक्रम में व्यस्त होना है। इसीलिये चिन्तन को किन्चित विराम देकर विश्राम कर लें।”

यह कहकर महारानी सलिला चुप रह गई जिससे निषादराज सोने का प्रयास करें, किन्तु उनका चित्त विराम नहीं ले रहा था। वे फिर अपने कुलगुरू द्वारा सुनाये गये निषाद जाति के इतिहास के नये प्रसंग में खो गये।

.....राजर्षि शान्तनु ने गंगा तट पर एक परम रूपवती युवती को देखा। शान्तनु उनके रूप को देखकर मोहित हो गये। उन्होंने उससे निवेदन किया कि तुम मुझे पति के रूप में स्वीकार कर लो। उस गंगा नाम की युवती ने शर्त रख दी कि मुझे आपकी पत्नी होना स्वीकार है, लेकिन मैं अच्छा बुरा कुछ भी करूं आप मुझें रोकेंगे नहीं अन्यथा मैं आपका साथ छोड़कर चली जाऊँगी। शान्तनु ने उसकी बात स्वीकार कर ली। वे गंगा समुदाय की पुत्री थीं। समय व्यतीत होने पर एक एक करके गंगा के गर्भ से सात पुत्र हुये परन्तु ज्योंही पुत्र होता गंगा उसे गंगा की धारा में प्रवाहित कर देती, अर्थात अपने गंगा समुदाय में ले जाकर उसके पालन पोषण हेतु परिजनों को सौंप देती। राजा यह सब नहीं समझ पाये। जब उसके आठवां पुत्र हुआ तो मोह वश उन्होंने गंगा को उसे गंगा की धारा में समर्पित करने से रोका। शर्त के अनुसार वह उस पुत्र को छोड़कर चली गई, आज वही गंगा पुत्र देववृत भीष्म पितामह हैं।

निषादराज कों याद आने लगा इसी कथा से जुड़ा एक और प्रसंग- एक बार पारासर ऋषि ने यमुना पार करना चाही। नौका चलाने का कार्य निषाद पुत्री सत्यवती कर रही थी। सत्यवती पर पारासर ऋषि मुग्ध हो गये। वे अपने काम के वेग को रोक नहीं पाये। यों सत्यवती के गर्भ से यमुना की रेत में महर्षि वेदव्यास का जन्म हुआ।

इधर गंगा के चले जाने के कुछ वर्षो पश्चात राजर्षि शान्तनु ने निषादों में देवांगना समान सुंदर एक कन्या को देखा। शान्तनु ने उससे पूछा- “तुम कौन हो ?”

प्रश्न सुनकर वह लजाते हुये बोली- “मैं निषाद कन्या सत्यवती पिताश्री की अनुपस्थिति में नाव चलाती हूँ।”

“आप निषाद कन्या ! देवांगनायें भी आपके रूप सौन्दर्य को देखकर ईर्श्या करती होंगी। विधि ने आपके अंगों को जाने किस तूलिका से अंकित किये है।”

अपने रूप सौन्दर्य की बात सुनते हुये वह बोली, “राजन, आप कहना क्या चाहते हैं ?”

“मैं आपसे विवाह करना चाहता हूँ।”

“किन्तु राजन, इसके लिये आपको हमारे पिताश्री से अनुमति लेना पड़ेगी।”

“आपकी बात उचित है। हम उनसे मिलेंगे।”

जब निषादराज ने राजा को समक्ष देखा तो प्रश्न किया, “राजन आप यहाँ कैसे ?”

प्रश्न सुनकर शान्तनु ने अपनी बात कही, “मैं आपकी कन्या सत्यवती से विवाह करना चाहता हूँ।”

“राजन् यह कैसे सम्भव है ?”

“निषादराज यह सम्भव क्यों नहीं है ?”

“आप लोग हमारी जाति के साथ भेदभाव रखते हैं। आप यदि मेरी पुत्री से विवाह करना ही चाहते हैं तो मेरी एक शर्त है।”

“राजा शान्तनु ने आश्चर्य व्यक्त किया, “कैसी शर्त ?”

“यही कि, मेरी पुत्री का पुत्र ही आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा।”

राजा शान्तुन गंगा से उत्पन्न आखिरी बचे अपने वीर और योग्य पुत्र देवव्रत के कारण उसकी बात को स्वीकार नहीं कर पाये। वापस राजधानी चले आये।

महल के दूसरे राजपरिजनों से समाचार पाकर देवव्रत ने पिताश्री को व्यथित देखा। देवव्रत ने पूछा तो शांतनु ने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर देवव्रत निषादराज के घर जा पहुँचे। उनकी एकमात्र शर्त जानकर, बिना विचार किये ही उन्होंने भीशण प्रतिज्ञा कर डाली कि'' मैं

आजीवन ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करूँगा। आपकी पुत्री का बड़ा पुत्र ही हमारे राज्य का उत्तराधिकारी होगा।"

उसी प्रतिज्ञा के कारण देववृत भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

राजर्षि शान्तनु की पत्नी सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। चित्रांगंद और विचित्र वीर्य। अभी दोनों राजकुमार युवा भी न हो पाये ंथे कि राजा शान्तनु की मृत्यु हो गई। चित्रांगद वीर पुरूष था, उसने असुरों पर चढ़ाई कर दी और वह उस युद्ध में मारा गया।

देवव्रत भीष्म ने भाई का संस्कार किया। उसके पश्चात अपने छोटे भाई विचित्र वीर्य को गद्दी पर बैठाया। उसी समय काशी नरेश की तीन पुत्रियों का स्वयंवर हो रहा था। भीष्म ने उन तीन कन्याओं को बलपूर्वक अपहरण कर रथ पर बैठाया और अपनी राजधानी ले आये। वे स्वयं तो ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से बंधे थे। उनमें सबसे बड़ी अम्बा ने देवब्रत से कहा, "मैं पहले ही, मन ही मन राजा शाल्व को वरण कर चुकी हूँ। स्वयंवर में उन्हें ही वरण करती।"

यह सुनकर देववृत ने उन्हें ससम्मान शाल्व के पास भेज दिया। शेष दो कन्या, अम्बिका और अम्बालिका का विचित्रवीर्य के साथ विवाह कर दिया। विचित्रवीर्य भोगविलासी था। कुछ ही समय में उसे क्षय रोग हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। अब राज्य का कोई उत्तराधिकारी न रहा तो बड़ा धर्म संकट उत्पन्न हो गया। सत्यवती ने भीष्म से कहा, "इन रानियों से तुम पुत्र उत्पन्न करो।" यह सुनकर भीष्म ने कहा, "माता श्री यह तो बिलकुल असंभव है ! मैने ब्रह्मचर्य व्रत ले रखा है।"

वे माता श्री सत्यवती की बात स्वीकार नहीं कर सके तब सत्यवती ने वेदव्यास को बुलाया और उनसे कहा, "तुम मेरे बड़े पुत्र हो। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ तुम इन रानियों से पुत्र उत्पन्न करो।"

वेदव्यास माताश्री की आज्ञा को अस्वीकार नहीं कर पाये। इस तरह अम्बिका से धृतराष्ट्र और अम्बालिका से पाण्डु को उत्पन्न किया। अम्बालिका की प्रेरणा से उसकी दासी ने व्यास जी के द्वारा विदुर को उत्पन्न किया।

यह सब सोचते हुए हिरण्यधनु इस निश्कर्श पर पहुंचे, कि आज हमारी समझ में यह नहीं आता है हम निषादजाति के लोग छोटे कैसे हो गये। ये कौरव ये पाण्डव ये विदुर निषाद जाति की कन्याओं के वंशज हैं। क्या ये लोग अपने इस सारे वृत्तान्त को भूल गये ? अभी तो भीष्मपितामह बैठे हैं इस सारे वृत्तान्त को कैसे भुलाया जा सकता है

हिरण्यधनु सोच में रात्रि पर्यन्त नहीं सो सके। वेणु के बारे में वे सोचने लगे, "सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर से विवाह करने वाली वेणु को पुत्रवधू के रूप में पाकर मैं आत्मसंतोश का अनुभव कर रहा हूँ। जब यह संदेश हस्तिनापुर पहुँचेगा कि वेणु ने एकलव्य का अंगुष्ठ कटने के उपरान्त भी एकलव्य को वरण कर, उसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर घोषित कर दिया है। तो यह बात भी पाण्डवों को असह्य हो जावेगी। मुझे गर्व है इस घटना से जुड़कर ही सही, वेणु जैसी लक्ष्यबेधी धनुर्धर हमारी पुत्रवधू बन रही है।"

यह सोचकर वे विस्तर से उठते हुये अपने आप में नये उत्साह का संचार अनुभव करने लगे। आज विवाह समारोह में सम्पूर्ण राज्य से भील जातियों के प्रमुख व्यक्ति भाग लेने के लिये आये थे।

विवाह में निषाद वंश की परम्पराओं के अनुसार वरण की प्रक्रिया शुरू हो गई। वेणु ने एकलव्य को पुष्पहार पहनाकर वरण कर दिग् दिगन्त में उसके यश-गौरव-गाथा की पताका फहरा दी। इससे विषाद का सारा वातावरण तिरोहित हो गया और प्रमोद का वातावरण गूँज उठा।

महारानी सलिला इस अवसर पर सोच रही थी, "कुछ खोकर हमें बहुत कुछ मिल गया है। इस संकट की घड़ी में वेणु ने जो आत्मसन्तोष प्रदान किया है वह अवर्णनीय है। कौरव और पाण्डव अब यह समझ लें हम निहत्थे नहीं हैं। उनमें तो ऐसी कोई विदुषी नारी नहीं है जो धनुर्धर हो।"

जब सभी के समक्ष अग्नि की परिक्रमा के साथ विवाह की परम्परा पूर्ण हो गई उसके पश्चात विशाल भोज का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सभी आनन्द का अनुभव कर रहे थे। रात्रि में भील ओर निषाद ललनाओं ने अपने सांस्कृतिक गीत-नृत्य प्रस्तुत किए, जिसे देखकर बाराती और घराती प्रसन्न होते रहे ।

दूसरे दिन मान सम्मान पूर्वक ढोल धमाके के साथ पुत्रवधू वेणु को विदा कराकर बारात निषादपुरम के लिये चल पड़ी।

उस क्षण बड़बनी ग्राम के लोग वेणु बिटिया के जाने से, अपने को निस्सहाय सा अनुभव कर रहे थे। सभीके सामने प्रश्न खड़ा था- "अब दस्युओं से हमारी रक्षा कौन करेगा ?"

उन्हें याद आ रही है उस दिन की जब दस्युओं ने लूटपाट के उद्देश्य से बड़बनी पर धावा बोला था। किन्तु वेणु बिटिया की बाण विद्या से वे उल्टे पांव लौटने को विवश हो गये थे।

एक वृद्ध कह रहे थे, "अब हमारी बिटिया अकेले एक ग्राम की ही नहीं वल्कि सम्पूर्ण निषादराज्य की रक्षक बन गई हैं।"

यह सुनकर तो सभी आनन्द के सागर में डुबकियाँ लगाते हुये अपने अश्रुओं के प्रवाह को रोक नहीं पा रहे थे।

7

'जब जब आपदायें आई हैं, किसी नये पथ का निर्माण उपस्थित हुआ। उस पथ के स्वरूप का निर्धारण उस आपदा पर निर्भर रहा है।''इस गहन चिन्तन में निषादराज बारात लेकर लौट आये। जैसे ही उन्होंने निषादपुरम में प्रवेश किया , परमहंस बाबा की खोज की गई। परमहंस जी का कहीं कोई पता नहीं चला।

हिरण्यधनु राजप्रसाद के विशाल कक्ष में सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने विवाह के उपलक्ष में होने वाले लोकनृत्यों का बहिष्कार कर दिया है। पास में ही मंत्री चक्रधर बैठे थे। पहरे पर पहरे दार धनुषबाण लिये खड़े हैं। इस समय सभा कक्ष में एकलव्य ने प्रवेश किया। उसके साथ निषादपुरम के कुछ युवा धनुर्धर हैं।

उसने कक्ष में प्रवेश करते ही निषादराज के श्री चरणों में प्रणाम किया, बोला, "तात् प्रणाम।"

हिरण्यधनु ने आशीर्वाद दिया, "प्रभु तुम्हारी रक्षा करे।"

उनकी मुखाकृति की ओर देखकर एकलव्य बोला, "तात चिन्तित दिखाई दे रहे हैं।"

एकलव्य की यह बात सुनकर वे कहने लगे, "वत्स, चिन्ता का ही विषय है। अब धर्म कर्म नाम की कहीं कोई बात शेष नहीं रह गई हैं। कहते हैं जब जब धर्म कर्म शेष नहीं रहता तब तब धरती पापियों के बोझ से बोझिल होकर मरने लगती है। देखना, इन पापियों का अन्त शीघ्र ही होगा।"

यह सुनकर एकलव्य को लगा कि पिताश्री द्रोणाचार्य जी द्वारा अंगुष्ठ मांगने की घटना की यह व्याख्या उचित नहीं कर रहे हैं। यह सोचते हुये बोला, "तात् हमें अब इस तरह नहीं सोचना चाहिये।"

यह बात सुनकर हिरण्यधनु आवेश में आते हुये बोले, "इस तरह क्यों नही सोचना चाहिये। उन्होंने तुम्हें अपना शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया कि वे तुम जैसे नीच जाति के युवक को क्षत्रिय राजकुमारों के साथ कैसे सिखायं ? जबकि हम नीच जाति के नहीं है। मैं तुम्हें कई बार अपने वंश का गौरवमय इतिहास सुना चुका हूँ। हमारे आदि पुरूष निषादराज तो महाराज प्रथु के बड़े भाई थे। और हम सभी कुरूवंशी निषादकन्या सत्यवती की सन्तान हैं। फिर भी यह समझ में नहीं आता, कि ये हमें छोटा कैसे मानते हैं ? तुम इतने सीधे सच्चे निकले कि उस मिट्टी की मूर्ति को गुरू मानकर अभ्यास करते रहे। वत्स, वैसे तुम जैसे प्रतिभावान के लिए तो किसी गुरू की आवश्यकता ही नहीं थीं। अभ्यास ही सच्चा गुरू हैं। तुमने उनसे यह क्यों नहीं कह दिया, " मेरी गुरू तो वह मूक प्रतिमा है। यदि यह मूक प्रतिमा कह दे तो मैं अपना अंगुष्ठ दक्षिणा में देने को तैयार हूँ।"

एकलव्य ने आश्चर्य व्यक्त करते हुये कहा, "तात यह आप क्या कह रहे हैं। मैने उस प्रतिमा में आचार्य द्रोण की ही प्राण प्रतिष्ठा की थी।"

हिरण्यघनु अपने पुत्र को समझाते हुये बोले, "वत्स, तुम इतने भावुक निकले कि भावुकता में अपने श्रम और साधना को ही भेंट में चढ़ा आये।"

अभी तक मन्त्री चक्ररधर पिता पुत्र के इन सम्वादों को चुपचाप सुन रहा था। उससे भी चुप न रहा गया तो बोला, ‘‘क्षमा करें देव, मुझे तो युवराज का अंगुष्ठ दान लेने में एक राज और समझ में आ रहा है। आज्ञा हो तो देव की सेवा में कहूँ।’’

हिरण्यधनु ने कहा, ‘‘कहो कहो मन्त्री चक्रधर, हम कौरव और पाण्डवों में से नहीं, जिनमें कोई भी सत्य का पक्ष लेने वाला ही नहीं है। वहां तो आचार्यों तक के मस्तिष्क भाव शून्य हो गये है।’’

चक्रधर ने आत्मविश्वास व्यक्त किया, ‘‘मुझे तो लगता है हस्तिनापुर के महाराज भीलों की गौरव गाथा सुनकर भयभीत हो उठे हैं इसी कारण उन्होंने यह कृत्य हो जाने दिया। राजकुमारों तथा आचार्यो की भर्त्सना तक नहीं कीं अब उन्हें हमारा क्या डर ? वे डरने लगे थे तो युवराज एकलव्य की बाण वर्षा से।’’

मन्त्री चक्रधर की बात पुष्ट करते हुये हिरण्यधनु बोले, ‘‘मन्त्री तुम ठीक कहते हो। अब तो हमें एक खुली सभा करनी होगी जिससे सच्चाई को उजागर किया जा सके।’’

उनका यह सम्बोधन सुनकर मन्त्री चक्रधर ने स्वीकार किया, ‘‘जैसी देव की आज्ञा।’’

हिरण्यधनु ने निर्णय दिया, ‘‘राज्यभर में मुनादी करवा दी जावें कि निषादराज जनता जनार्दन से राज्य की आगामी नीतियों के सम्बन्ध में परामर्श ग्रहण करना चाहते है।’’

मन्त्री चक्रधर ने उत्तर दिया, ‘‘जैसी देव की आज्ञा।’’

यह कहते हुये बात को क्रियान्वित करने के लिये मन्त्री चक्रधर राजसभा से बाहर निकल गये। उनके चले जाने पर एकलव्य भी पिताश्री को प्रणाम करके चला गया।

हिरण्यधनु महासभा में होने वाले बिन्दुओं पर गहराई से विचार विमर्श करने लगे।

पिताश्री की बात का गहराई से चिन्तन करते हुये एकलव्य अपनी पूर्व अभ्यास स्थली पर पहुँच गया।

आज एकलव्य को अपनी इस अभ्यास स्थली पर पहुँचकर लगा- गुरूदेव आचार्य द्रोण उसके सामने खड़े हैं।

उसके मुंह से शब्द निकले, ‘‘प्रणाम गुरूदेव ,अब तो मुझे, प्रारम्भ से ही धनुषवाण चलाने का अभ्यास करना पड़ेगा। आपकी वह प्रतिमा अंगुष्ठ दान के लिये वहीं छोड़ आया हूँ। अब तो यहां आपकी नवीन प्रतिमा स्थापित करनी होगी। आपका यह नया रूप मुझे नई शक्ति देगा। गुरूदेव मैं पुनः अभ्यास करना चाहता हूँ।’’

एकलव्य धनुष पर बाण रखना चाहता था। अंगुश्ठ के अभाव में अवरोध आने पर वह सोचने लगा, ‘‘अरे ! यह क्या हो गया ! अब मन कुन्ठित हो रहा है। धनुष बाण पकड़े भी नही जा रहंे हैं। मन घुटन का अनुभव कर रहा है। एक पीड़ा जन्म ले रही है। गुरूदेव आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ, ‘‘गुरूदेव आपकी इस शिक्षा व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न हो रहा है। समझ नहीं आ रहा है ऐसी सवर्ण अवर्ण के भेदभाव की शिक्षा देकर आप आर्यवर्त का क्या हित करना चाहते हैं ? वह और गहन चिन्तन में डूब गया कि, ‘‘गुरूदेव, निषादपुरम के लोग कितने असभ्य शब्दों का प्रयोग आपके लिये कर रहे हैं। मैं किस किस की बात का समाधान करूँ। इसलिये चुपचाप सुनकर रह जाता हूँ। अब तो मैं आपकी नई प्रतिमा तैयार करूँगा। अभ्यास के बल पर असम्भव को सम्भव कर दिखाऊँगा। यह सोचकर एकलव्य ने अपने तूणीर से एक बाण निकाला अंगुलियों के सहारे धनुष पर बाण रखने का प्रयास किया। प्रत्यंचा पर रखे जाने वाला भाग अंगुष्ठ के अभाव में तर्जनी और मध्यमा के मध्य दब गया। इसे खींच कर छोड़ने में वेग नहीं रहा। मुखाकृति पर चिंता की रेखायें उभर आईं। शब्द निकले, ‘‘गुरूदेव, इससे तो आप मेरा शीश ही दक्षिणा में मांग लेते। मैं हँसते हँसते दधीचि ऋषि की अस्थियों की तरह अपना यह शीश आपके श्रीचरणों में अर्पित कर देता।’’

वह आत्म निरूपण करने लगा, ‘‘गुरूदेव मेरा दोष क्या था ? यही कि मैं अभ्यास और आस्था के बल पर सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर लगने लगा था। अर्जुन से यह जब देखा न गया। आप भी क्या करें, विवश हैं। गुरूदेव आपने मात्र एक अंगुश्ठ लिया है। धनुश की अपेक्षा अब मुझे गदा संचालन का भी अभ्यास करना है। धनुश बाण की तरह गदा संचालन में भी श्रेश्ठता लानी होगी।

इस दृढ़ निश्चय के बाद वह उठा उसने जलपात्र में से जल के घूंट कन्ठ के नीचे उतारे और फिर सोच में डूब गया, ‘‘गुरूदेव आपके इस अन्धे मोह ने आपकों भ्रमित कर दिया है। एक बार आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करके तो देखते। उसके पश्चात तो आपको इन कौरव और पाण्डवों की भी आवश्यकता नहीं रहती। रही

आपके अभावों की बात, वह तो मेरे ये बाण ही समाप्त कर देते। विश्व की सारी सम्पदा आपके श्री चरणों में होतीं। बिना अंगुष्ठ के मैं अब पूर्व के समान वेग कैसे ला पाउँगा ? शक्ति तो शक्ति स्थलों से ही संचारित हो सकती हैं।"

इसी समय उसके अंतर मे पश्चाताप का द्वन्द्व उपस्थित हो गया, "अरे मै कैसा हूँ ? दक्षिणा में दी हुई वस्तु के बारे में संकल्प विकल्प करने लगा। लोग क्या कहेंगे ? जीवन भर निराशा के भाव लेकर जीना था तो उसी समय अंगुष्ठ दान की मना कर देता। मुझे ऐसे चिन्तन पर धिक्कार है। जो आप जैसे महान तत्व चिन्तक पर सन्देह कर रहा हूँ।"

एकलव्य घटना के समस्त तथ्यों को साथ रखकर निर्णय पर पहुँचा, "गुरूदेव, लोग मेरी याद करेंगे गुरूभक्त के रूप में और आपकी याद करते समय आपको क्या नहीं कहेंगें ? जो कहें सुने मुझे उससे क्या लेना देना ? मुझे तो अपना कार्य करना हैं। मध्यमा और तर्जनी में वह शक्ति लाना है जो अंगुष्ठ के रहने पर भी न थी। चलूँ पिताश्री से यह कह दूँ कि आप मेंरी चिन्ता न करें। मुझे नया पथ मिल गया है। मैं मध्यमा और तर्जनी के बल पर पुनः अभ्यास करूंगा। चलकर वेणु को भी यह सुखद समाचार सुना देता हूँ जिससे वह भी समझ ले आज भी एकलव्य किसी के मुह की तरफ देखकर चलने वाला नहीं है।"

यह सोचकर वह वहां से निकला।

000000

निषादपुरम के युवक सभा स्थल का निर्माण करने में लगे थे। सम्पूर्ण भारत वर्ष के भील प्रमुखों के लिये, उनके सम्मान के अनुसार बैठने की व्यवस्था की जा रही थीं। निषादराज ने महासभा में भाग लेने के लिये सामान्य ओर सार्वजनिक घोशणा भी करवाई थी , जिससे आम जनता भी उसमें भाग ले सके।

यथा समय भीलों के जत्थे हाथ में धनुश बाण लिये हुये सभा स्थल पर आने लगे। सभी अपनी मर्यादा के अनुसार स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। निषादराज हिरण्यधनु भी मंच पर विराजमान हो गये। मंत्री चक्रधर ने अपना आसन ग्रहण कर लिया। उनकी पुत्रवधू वेणु ने सभा का दृश्य राजप्रसाद के झरोखे में से देखना प्रारंभ किया।

एकलव्य सभा स्थल पर उपस्थित हुआ। उसने सर्वप्रथम निषादराज के श्रीचरणों में प्रणाम किया। वह भी युवराज के आसन पर बैठ गया। जैसे ही युवराज ने आसन ग्रहण किया नीचे से आवाजें आने लगीं,'निषादराज हिरण्यधनु की जय। युवराज एकलव्य की जय।"

अब मन्त्री चक्रधर अवसर देखकर अपने स्थान पर खड़े हो गये और सभा को सम्बोधित करते हुये बोले, "आज मतभेद भूलकर सम्पूर्ण भारत वर्ष की भील जातियों के प्रमुख यहाँ उपस्थित हैं। हम निषादराज की ओर से सभी का अभिनन्दन करते हैं। मैं निषादराज से निवेदन करता हूँ कि सभा की कार्यवाही शुरू करने की अनुमति प्रदान करें।"

निषादराज ने आदेश दिया, "मंत्रिवर सभा की कार्यवाही प्रारम्भ करें।"

चक्रधर ने सभा के समक्ष अपना प्रतिवेदन रखा- ''उपस्थित महानुभावो, हमारे युवराज एकलव्य धनुर्विद्या का अभ्यास करने में लगे थे। इतने में पाण्डवों का प्रिय श्वान हमारे युवराज के पास आकर भोंक भोंक कर उनके लक्ष्य बेध में व्यवधान उत्पन्न करने लगा। हमारे युवराज ने श्वान के भोंकने के स्वर का अन्तर्मन में माप करके बिना फलक के बाण इस प्रकार संधान किये कि बाणों के प्रविश्ट होने से श्वान के मुंह में खरोंच तक न आये। हमें गर्व है, अपने युवराज के ऐसे अद्भुत हस्लाधव पर। उसके बाद वह श्वान अपने स्वामी पाण्डवों के 39 ण्पास पहुँचा। पाण्डवों ने उसके मंुह से बाण निकाले। ऐसा आश्चर्य जनक वाणों को मारने वाला उन्होंने ने पहले कभी न देखा था। कितनी दक्षता से बाण मारे कि श्वान के मुंह में खरोंच तक नहीं आई। बाणों का वेग इतना सन्तुलित था कि बाण निहित स्थान पर ही जाकर रूके। ऐसे महान धनुर्धर से मिलने सभी पाण्डव व्यग्र हो उठे। वे हमारे युवराज के पास आये। हमारे युवराज का नाम और पता ज्ञात किया और चले गये। उसके पश्चात वे गुरूदेव आचार्य द्रोण को साथ लेकर हमारे युवराज के पास पुनः उपस्थित हुये। हम आज तक अपने

श्रम अपनी शक्ति और अपने उपार्जन का शोषण कराते आ रहे हैं। अब एक ऐसा समय आ गया है जब हम में एक प्रतिभा उत्पन्न हुई है। आज जब उसका भी शोषण हुआ है तो यह बात हमें असहनीय हो गई है। आपको ज्ञात होगा हमारे युवराज धनुर्विद्या ग्रहण करने के लिये आचार्य द्रोण के पास गये थे। आचार्य द्रोण निषादजाति के भील युवक को राजकुमारों के साथ कैसे प्रशिक्षित करते ? इसलिये उन्होंने हमारे युवराज को धनुर्विद्या प्रदान करने से मना कर दिया। सच तो यह है कि इस कौशल पर उनका ही एकाधिकार बना रहे। आचार्य द्रोण इसी के वशीभूत होकर, अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का आशीर्वाद दे चुके थे। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि संसार में उससे भी श्रेष्ठ कोई धनुर्धर हो सकता है। आचार्य द्रोण को जब एकलव्य के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने की सूचना मिली तो वे हमारे युवराज से मिलने तत्क्षण निकल पड़े। आचार्य द्रोण ने एकलव्य से आकर पूछा, "तुम कौन हो ?"

हमारे युवराज ने उत्तर दिया, "मैं आपका शिष्य एकलव्य।"

यह सुनकर आचार्य ने दक्षिणा में उनका अंगुष्ठ माँग लिया। हमारे युवराज भावुक हैं। वे भावनाओं में बह गये उन्होंने तत्क्षण अपना अंगुष्ठ वाण के फलक से काटकर गुरूदेव के श्रीचरणों में अर्पित कर दिया।

चक्रधन के इस उदबोधन के पश्चात सामने बैठे लोगों मे खुसफुस बढ़ गई। वे आपस में विचार विमर्श करने लगे। यकायक ही उनका तीव्र स्वर सुनाई पड़ा, "हमारे युवराज ने अपने दांये हाथ का अंगुष्ठ गुरूदक्षिणा में दे दिया है। अब हम सभी बाण चलाने में अपने अंगुष्ठ का प्रयोग नहीं करेंगे।"

इस सार्वजनिक उदघोस के बाद कुछ क्षणों तक सभा स्थल सन्नाटे में डूबा रहा।

निषादराज हिरण्यधनु पीठासन से खड़े होते हुये बोले, "आप लोगों ने यह निर्णय लेकर अच्छा नहीं किया। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोग अपने गौरव, मान और लक्ष्य की रक्षा कैसे करेंगे ? जब इस बात की सूचना हस्तिनापुर पहुँचेगी, उनके घर घृत के दीपक जलेंगे। इस घटना के पश्चात तो हम लोगों को आधीन रखने में उन्हें सरलता होगीं। हमारी जातियां स्वतन्त्रता प्रेमी हैं। वे किसी के बन्धनों में रहना स्वीकार नहीं करतीं। अन्यथा इन घने जंगलों का आश्रय न लेतीं। इसी कारण इन जंगलों का स्वच्छन्द वातावरण हमने अपने रहने के लिये, स्वेच्छा से चुना है। अब आप लोग अंगुष्ठ के अभाव में धनुषबाण का उपयोग कैसे करेंगे ? बिना धनुष बाण के आप लोग भूखों मर जायेंगे। अंगुश्ठ के अभाव में आपका अस्तित्व कैसे शेष रह पायेगा ? बोलो- ऽऽऽऽ। बोलो ऽऽऽऽऽ। चुप क्यों रह गये बोलोऽऽऽऽऽऽऽऽऽ।''

यह कहते हुये निषादराज हिरण्यधनु का गला रूँध गया। वे पीठासन पर बैठ गये। अब एकलव्य आसन से खड़े होकर बोला, "मैं निषादराज से बोलने की अनुमति चाहता हूँ।"

हिरण्यधनु ने बैठे बैठे ही कह दिया, "कहो, अब क्या कहना चाहतें हो ?"

यह आदेश पाकर एकलव्य ने बोलना शुरू किया, "देखो आप लोगों ने जो प्रतिज्ञा कर ली तो कर ली। हम भील जाति के लिये यह गौरव की बात है। हम जो कहते हैं, सर्वस्व न्यौछावर कर उस बात का पालन करना भी जानते हैं। आप लोग चिंता नहीं करें। आज से हम सभी धनुष पर बाण चढ़ाने एवं, प्रत्यंचा खींचते समय ध्यमा और तर्जनी का उपयोग करेंगे।

सभी ने युंवराज का यह परामर्श सुना, सभी ने अनन्त आकाश की ओर लक्ष्य करके, अपनी

तर्जनी और मध्यमा के सहयोग से धनुष पर बाण चढ़ा कर प्रत्यंचा खींची।

सभा ने जय घोष किया-

युवराज एकलव्य की जय !

युवराज एकलव्य की जय !!

युवराज ने अपना आसन ग्रहण कर लिया। सभी का लक्ष्य अभी भी अनन्त आकाश बना हुआ था। यहविचित्र स्थिति देखकर निषादराज हिरण्यधनु बोले-

आज इस सभा में जनता जनार्दन का निर्णय मुझे स्वीकार हैं। अब आप लोग अपनी प्रत्यंचा को ढीला कीजिये। अपने बाण को धनुष से उतारिये। आज एक नई परम्परा ने जन्म लिया है। मुझे पूरा विश्वास है आप अपनी

गौरव गाथाओं की रक्षा कर सकेंगे। आपको अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पुनः अभ्यास करना पड़ेगा। मैं तो बूढ़ा हो चला, हाँ आप लोगों की इस प्रतिज्ञा से, आने वाली पीढ़ियाँ इस कहानी को कभी नहीं भूल पायेंगी। यह कहानी युगों युगों तक अनवरत रूप से चलती चली जायेगीं हम सभी संगठित होकर उठ खड़े हुये हैं। कल से हम अपना अधिकार मांगेगे, हम शासन करने का अपना सुरक्षित अध्किार ले कर रहेगें । मुझे हर्ष है, हमारा भविष्य उज्ज्वल है। अब आप सभी यह प्रतिज्ञा लेकर अपने अपने स्थान को लौट जायें। सतत् अभ्यास करने लग जायें। अभ्यास ही परम गुरू है। यह युवराज एकलव्य ने सिद्ध करके दिखा दिया है। इसलिये आप लोगों को अब किसी गुरू की आवश्यकता नहीं है।

यह सुनकर जय घोष सुनाई पड़ा, "निषादराज हिरण्यधनु की जय।"

'युवराज एकलव्य की जय!'

' भील संस्कृति की जय!'

'भील समाज की जय!'

कुछ ही क्षणों में सभा स्थल खाली हो गया था। सभी अपने अपने गन्तव्य की ओर लौट चले।

000000

''मानव जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी उपस्थित होते है जिनमें अपने पूर्व कृत्यों का मूल्यांकन करने का मन होने लगता है। उन क्षणों की गहरी तहों में प्रविष्ट होकर विवेचन करने का प्रवाह वह निकलता है।'' इसी दशा में डूबे द्रोणाचार्य को गुप्तचर ने निषादपुरम की नवीन स्थिति से अवगत करा दिया था।

आज अर्जुन के पांचाल से युद्ध करने हेतु चले जाने के पश्चात् उन्हें अपने निर्णय पर बारंबार पश्चाताप आ रहा है कि.....उन्होंने एकलव्य को उस दिन शिश्य क्यों नहीं बनाया ? उसके पश्चात् भी बस नही की, उसका अंगुष्ठ गुरूदक्षिणा में मांग लिया। यदि ये घटनाएँ न घटतीं तो आज संपूर्ण भारत वर्ष की भील जातियों को एकजुट होने का अवसर तो न मिलता। उनकी एकता का लाभ पांचाल नरेश द्रुपद ने उठाया और उन्ही में से कुछ भील जातियों को युवा कौरव और पाण्डवों की सेना से युद्ध करने के लिये एकत्रित कर लिया। उन्हीं के कारण दुर्योधन और कर्ण उसे बन्दी बनाकर नहीं ला सके। आज द्रुपद को बन्दी बनाकर लाने के लिये अर्जुन को भेजना पड़ा है।

उन्हें पुरानी घटनायें प्रायः याद आती है, आज भी याद आ रही हैं .....जब मैं और द्रुपद पिता श्री भारद्धाज के आश्रम में गुरूदेव अग्निवेश्य जी से शास्त्र और शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उन दिनों द्रुपद का मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता था। हमेशा इधर उधर की बातें किया करता। मैंने अनुभव किया उसके राज पुत्र होने के कारण पिताश्री उससे कुछ नहीं कहते। मुझे छोटी छोटी त्रुटियों के कारण पिता श्री का क्रोध सहन करना पड़ता था। उसी समय से मेरे मन में राजा की तरह सुख सुविधायें भोगने की इच्छा उत्पन्न हो गई। लम्बे समय तक वह इच्छा सुसुप्त रूप से मेरे हृदय में पड़ी रही। उनकी पूर्ति के लिये मैं यहां वहां भ्रमित होकर घूमता रहा। यदि ऐसा नहीं होता तो मुझे कुरूवंश का सेवक न बनना पड़ता।राज्यपोषित युद्धप्रधान मेरी इस शिक्षा दीक्षा ने मेरे शिष्यों को क्या दिया है ? सभी अपने अपने अहम् को पोषित करने लगे हैं। इसकी तुलना में अवन्तिकापुरी की सान्दीपनि शिक्षा पद्धति मानव मन में प्रेम भाव उत्पन्न करके उपकार की प्रवृति को जन्म दे रही है। मेरी अपनी शिक्षा पद्धति अंगुष्ठ काटने में लग गई। अर्जुन ने तन मन से मेरी सेवा की है। जितना मैंने उसे शिक्षित करने का प्रयत्न किया उतना तो मैं अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी नहीं कर पाया। पत्नी कृपी इस बात को लेकर कितना क्या नहीं कहती रहती ? लेकिन मैं हूँ कि अर्जुन के पीछे अपने अहम् की तुष्टि के लिये भागता रहा हूँ। आज अर्जुन उसी का ऋण चुकता करने के लिये द्रुपद से युद्ध करने गया है। कितने अभावों में मेरा जीवन व्यतीत हुआ। सोचा था कि अभावों का जीवन ही ब्राह्मण का धन है। किन्तु मै हर मोर्चे पर हारता रहा हूँ। अभावों की पूर्ति के लिये ही मैंने द्रुपद की शरण ली। द्रुपद इतना तुच्छ निकला कि उसने मुझे किंचित भी घास नहीं डाली। उल्टे अपमानित करने बैठ गया। कहने लगा, "राजा और रंक की कैसी मित्रता ?"

उस दिन वह भूल गया था कि एक ब्राह्मण के असंतोष में कितनी अग्नि होती है। मैं ब्राह्मणत्व के अहम् की पूर्ति के लिये अर्जुन को बढ़ाता रहा। इस कारण परीक्षा से दूर रखने के लिये जानबूझ कर मैंने परीक्षा में, कर्ण को भी अपमानित किया। कहा- सूतपुत्र उस परीक्षा में भाग नहीं ले सकता।. मैंने यह बात कही तो दुर्योधन ने कहा, "गुरूदेव आज जाने किस किस का अंगुष्ठ काटने वाले हैं।"

उसने सत्य ही भविष्यवाणी की थी। उस दिन भी कर्ण का ही अंगुष्ठ कटा था।

.....और दुर्योधन मन का कितना ही खराब क्यों न हो लेकिन कहीं कहीं तो वह बहुत ही श्रेष्ठ कार्य कर जाता है। उस दिन कर्ण को उसने तत्क्षण अंग देश का राजा बना दिया।"

निषादपुरम में भील जातियों की सभा में जो निर्णय हुआ है उससे भीष्म भी चिन्तित दिखाई देते हैं। क्या कहा था उस दिन भीष्म ने, "आचार्य द्रोण, एकलव्य को शिक्षा देने के लिये स्वीकार न करके बड़ी भारी भूल की है। ऐसी प्रतिभायें युगों-युगों में कभी कभी पैदा हुआ करती हैं। उसका दुर्भाग्य तो यह रहा कि वह हमारी युद्ध प्रधान शिक्षा पद्धति से प्रभावित होकर ही यहाँ चला आया। यदि अवन्तिकापुरी के सान्दीपनी आश्रम में गया होता तो वह निश्चय ही दूसरा कृष्ण होता।"

यही तो कहा था उस दिन भीष्म जी ने। एक कृष्ण के कारण तो सम्पूर्ण भारत वर्ष की राजनीति सिमट कर उनकी मुठ्ठी में कैद होती जा रही है। दूसरे श्री कृष्ण के रूप में एकलव्य का निरूपण। भीश्म जी के इस कथन को लेकर मैं महर्शि वेद व्यास से मिला। उन्होंने तो एक और रहस्य बतलाया, और वह रहस्य सुना तो मेरी आंखें बिस्मय से फैल गईं-'' श्री कृष्ण जी के पिताश्री वासुदेव जी दस भाई हैं.. 1. वासुदेव, 2. देवभोग, 3. देवश्रुवा, 4. अनाधूश्टि, 5. कनवक, 6. वत्सवान, 7. ग्रंजिम, 8. श्याम, 9. शर्मीक, 10. मुण्डूश। इनमें से देवश्रुवा के यहाँ अभुक्तमूल नक्षत्रों में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जन्मते ही पितांने उसका परित्याग कर दिया। सद्यजात शिशु को निषाद उठा ले गये। वह देवश्रुवा सुत ही आज निषादपुत्र एकलव्य के नाम से विख्यात हो रहा है।''

मैंने उमगते उत्साह से इस प्रसंग को पत्नी कृपि के समक्ष रखा। वे इसे ध्यान से सुनकर बोली, ''स्वामी मैं इस प्रसंग को जनश्रुति के रूप में नगर की स्त्रियों से सुन चुकी हूँ।''

''जनश्रुति के रूप में कैसे ?''

''देवश्रुवा ने दरअसल एक परमसुन्दरी निषाद कन्या से विवाह किया था। उसी पत्नी से देवश्रुवा के यहां पुत्र पैदा हुआ । जो बड़ी कठिन घड़ी में जनमा था । पुरोहितों ने पंचाग देखकर बताया कि जातक यों तो प्रतापी और यशवान होगा लेकिन पिता के लिए उसका मुंह देखना भी घातक है। उनके यहाँ अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्मे बालक को त्यागने की परम्परा है। देवश्रुवा ने पुत्र के त्यागने का निर्णय पत्नी के समक्ष रखा। पत्नी ने सोचा, संभवतः निषादसुता होने के कारण उसका बेटा त्यागा जा रहा है । पिता के रूप् में देवश्रुवा अपने पुत्रके साथ न्याय नहीं कर रहे हैं। कहा जाता है कि इसलिये देवश्रुवा की निषाद पत्नी ने अपने इस पुत्र को स्वयं ही अपने पिता के वंशज निशादों को सोंप दिया और नगर में लौट कर यह प्रचार कर दिया कि यमुना के घाट पर वह जब एक वृक्ष की छाया में पुत्र को सुलाकर जल में स्नान करके लौटी तो निशादों का एक समूह तीव्रगति से आकर मेरे बालक को ले गया। मैं असह्य होकर चीखती चिल्लाती रह गई।''

''देवी, इसी कारण महर्शि वेद व्यास ने अपने ''जय'' नामक ग्रंथ में निशादों द्वारा उस पुत्र को उठाकर ले जाने वाली बात लिखी है।''

''स्वामी मुझे तो लगता है.....।''कृपी बोलते हुए रूकी ।

''देवी, संकोच न करें स्पश्ट कहें।''

''स्वामी, सत्य तो यह है कि यादवों की संतान न हो कर यह युवक एकलव्य, निषाद हिरण्यधनु का ही पुत्र है। लोगों को ा एक पिछड़े वर्ग के युवक के सर्वश्रेष्ठधनुर्धर होने की बात पच नहीं रही है। इसी कारण इन असत्य कथनों का प्रचार किया जा रहा है कि यह सिद्ध कर सकें कि सवर्ण का बेटा ही सदा सबसे आगे रहता है, भला आदिवासी ओर पिछड़े लोगों में ऐसी प्रतिभाकहां से आयेग ! इस जनश्रुति से उनका अपना गौरव अक्षुण्य बना रहेगा। '' कहते हुऐ कृपी फिर सकुचाई, और अटकते हुऐ अपना वाक्य आगे बढ़ाया-''यहाँ उसका एक और अंगुश्ठ काटा जा रहा है। उसे लोग निषाद भी नहीं रहने देना चाहते।''

''देवी, अंगुश्ठ दान के पहर्ले एकलव्य के सम्बन्ध में एक भी चर्चा न थी, वह एक अल्पज्ञात वनवासी था, और इस एक घटना के बाद आज उससे अनेक प्रसंग जुड़ गये हैं। यह प्रसंग्र एकलव्य की जाति केलोगों ने ही ज्यादा प्रचारित किया है । सबके अपने अपने स्वार्थ हैं इसमें । वैसे मुझे लगता है यह निश्चय ही निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र है। इसमें संदेह नहीं। इन प्रसंगों से मेरा मन अत्यधिक व्यथित है, क्यों कि इन प्रसंगों से मेरी छबि ही बिगड़ती है।''

आज इतनी अवधि बाद अब मैं अपनी शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करना चाहूँ तो यह भी सम्भव नहीं है। यदि सान्दीपनि शिक्षा पद्धति की तरह कुछ कर पाता किन्तु मैं तो अपने राग द्वेष की भावना को लेकर आगे बढ़ता रहा हूँ। अब इसके रूप को परिवर्तित करना भी मेरे अधिकार की बात नहीं रही। जितने कदम आगे बढ़ गये उन्हें पीछे कैसे ले जाया जा सकता है। आज लोग मेरी शिक्षा पद्धति की त्रुटियों को रेखांकित करने लगे। उस दिन भील जातियों ने जो निर्णय लिया वह सब क्या था ? प्रकारांतर से उन सबकी हुंकार मेरी इस शिक्षा व्यवस्था की भर्त्सना ही थी।

अर्जुन आज द्रुपद को पकड़कर मेरे समक्ष लेकर भी आ गया तो क्या उसकी शिक्षा पूर्ण हो गई ? मैं तो सोचता हूँ यदि मैं अर्जुन का सच्चा शुभ चिन्तक हूँ तो उसको अपने युद्धप्रधान पाठयक्रम के अंध शिष्यत्व से मुक्त करके अवन्तिकापुरी के सान्दीपनि आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दूँ।

.....न ...न...भला यह कैसे हो सकता है ! यदि मैंने अर्जुन को ऐसा करने के लिये प्रोत्साहित कर दिया तो मेरा क्या अस्तित्व शेष रह जायेगा। वे चेते- मैं भी कैसा हूँ, क्या क्या सोचने में लगा हूँ ? इस समय तो अर्जुन द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे समक्ष उपस्थित करने वाला है। आज के दिन के लिये मैंने किन किन के अंगुष्ठ काटे। यदि दुर्योधन और कर्ण की तरह अर्जुन भी उसे बन्दी बनाकर नहीं ला पाया तो मुझे वे कटे हुए ढेरसारे अंगुष्ठ मिलकर मुझे अत्याधिक धिक्कारेंगे। आज नहीं तो कल इन अंगुष्ठों का प्रायश्चित तो मुझे करना ही पड़ेगा।

कहा जाता है पिता के पापों का प्रायश्चित बच्चों को करना पड़ता है। शिव शिव ! कहीं मेरे अश्वत्थामा को मेरे इन पापों का प्रायश्चित न करना पड़े। अरे ! हट ये सब मन की शंकायें हैं। मन से ही इन सभी बातों का जन्म होता है। सम्पूर्ण रसों के स्थाई भावों की जड़ यह मन ही है। मन ही इन स्थाई भावों को सुसुप्त अवस्था प्रदान कर देता है। मन ही इन स्थाई भावों को जाग्रत कर क्या क्या रौद्र रूप नहीं दिखाता ?

प्रभु ने कैसी संरचना इस मन की की है ? यदि द्रुपद से शत्रुता का भाव नहीं रखता तो आज जितने अपराध मन स्वीकार कर रहा है वे एक भी घटित नहीं होते।एक अहम् ही आदमी के अन्दर बहुत बड़ा विकार है। सारे विकार तो आवेगों के निस्सृत हो जाने पर निकल जाते हैं। किन्तु यह अहम् ऐसा भाव है, जिसे जितना दबाने का प्रयास किया गया है वह उतना ही पल्लवित होता चला जाता है।

आज मैं अहम् की परिसीमा के सर्वोच्च बिन्दु पर आकर खड़ा हो गया हूँ। यदि अर्जुन द्रुपद को मेरे समक्ष ले ही आया तो मुझे क्या मिलेगा ?.....कदाचित आधा राज्य ! क्यों मिलेगा आधा राज्य ?.....उसे बन्दीग्रह में डालकर उसके सम्पूर्ण राज्य का भोक्ता क्यों नहीं बन जाता ? किन्तु इस मित्र शत्रु द्रुपद के अंगुष्ठ को पूरी तरह नहीं काट सकता। इसे क्षत विक्षत करना ही पर्याप्त है। इससे आधा राज्य लेने पर सभी कहेंगे आचार्य द्रोण कितने न्याय प्रिय हैं।.....अरे ! मेरी न्याय प्रियता तो तब है जब उसे बन्दी बनाकर सामने लाये जाये और मैं उसको क्षमा दान दे दूँ। उसके सम्पूर्ण राज्य को यथावत वापस लौटा दूँ।.....नहीं नहीं, ऐसा दानी न मैं कभी रहा हूँ न बन पाऊँगा। उतना ही त्याग उचित है जितना अहम् के पोषण में कभी न रहे। आधा राज्य देने का ही तो उसने निश्चय किया था, मैं उसके वचनों केा भरवा लूंगा, और आधा राज्य ही लूंगा न इससे सुई बराबर ज्यादा, न इससे सुई बराबर कम !

सहसा वे प्रसन्न हुऐ-वाह, क्या उपमा आई है, न सुई बराबर ज्यादा न सुई बराबर कम ! कल धृतराष्ट्र की सभा में किसी बहाने से यह स्वनिर्मित मुहावरा सुनाऊंगा, तो कुरू राजदरबार के शब्दकोश में एक नया मुहावरा जुड़ जायेगा ।

उन्हे याद आती है उस दिन की जब वे और द्रुपद गुरूकुल में थे, द्रुपद का शस्त्र और शास्त्र के अध्ययन में मन नहीं लगता था। मैं मित्र भाव से एक एक शब्द की व्याख्या करके उसे समझाने लगा। हम दोनों जब एकाकी होते तो वह भोग विलास की बातें किया करता। मैं था कि उसमें श्रेष्ठ धनुर्धर होने के गुण देखना चाहता। कितना चरित्रहीन था यह द्रुपद ?

जब देखो तब पता नहीं कैसी कैसी युवतियों की बातें किया करता। मैं था कि सच्चे मित्र का धर्म निर्वाह करने में लगा हुआ था। उसे सत् के रास्ते पर चलाने का प्रयास करता रहा। उसके भ्रमित होने को अपना भ्रमित होना मानता रहा। कुछ दिनों के प्रयास से उसकी शस्त्र और शास्त्र में रूचि उत्पन्न हो गई। वह यह उपकार मेरे प्रति मानने भी लगा। इसीलिये उसने अर्द्धराज्य की बात भी भावुकता में कह दी होगी। मैं इतना सीधा और सच्चानिकला कि उसकी इस बात को सत्य मान गया। उसकी इस बात के लिये प्रतिदिन नये नये घरोंदे बनाने मिटाने लगा। धीरे धीरे वह बात चिन्तन में स्थाई भाव का रूप धारण कर गई। आज जब अर्जुन से पांचाल नरेश द्रुपद का युद्ध हो रहा होगा उस स्थिति में ही इस सत्य को स्वीकार कर पा रहा हूँ।

अरे ! दुन्दुभि का स्वर सुनाई पड़ने लगा। निश्चय ही अर्जुन का नगर आगमन हो गया है। आज सम्पूर्ण हस्तिनापुर इस प्रसंग को लेकर चिन्तित हैं। अब तो अर्जुन द्रुपद को लेकर आ ही गया है।''

और सचमुच ऐसा ही हुआ ।

युद्ध स्थल से लौटे अर्जुन ने उपस्थित होते ही कहा, "गुरूदेव के श्रीचरणों में प्रणाम स्वीकार हो।"

द्रोणाचार्य ने दोनों हाथ उठाकर हृदय से सारा आशीर्वाद उसे अर्पित करते हुये कहा, ''यशस्वी भव।''

बंदी अवस्था में द्रुपद को उनके समक्ष खड़ा कर दिया गया।

उसे सामने खड़ा देखकर द्रोणाचार्य वोले, “द्रुपद आज मैंने तुम्हारे देश केा बलपूर्वक अपने अधिकार में ले लिया। अब तो तुम्हारा जीवन भी मेरे आधीन है। क्या तुम पुरानी मित्रता को बनाये रखना चाहते हो ?”

द्रुपद व्यंग की हँसी में ठहाका मार कर हँसते हुये बोला, “द्रोण, मैं तुम्हारे मन्तव्य को विद्यार्थी जीवन में ही समझ गया था। तुम शिष्य चाहते हो एकलव्य जैसा, जिसका जब चाहा अंगुष्ठ काट लिया और मित्र भी ऐसा ही चाहते हो जो तुम्हारे संकेत पर अपना सिर कटाने को तैयार रहे। मैंने तुम्हारे अर्न्तमन को उसी समय समझ लिया था जब तुम मुझसे आधा राज्य माँगने आये थे। आज तुमने अर्जुन को भेजकर मुझे पकड़वा लिया। अरे द्रोण ! तुम शीष ही काटना चाहते हो तो शत्रु बनकर ही काट डालो, मित्रता की दुहाई मत दो। मैं अपना शीष मित्र के हाथों नहीं शत्रु के हाथों कटाना पसन्द करता हूँ। इसीलिये द्रोण, तुम मित्रता की दुहाई मत दो।”

वे अनुत्तर रह गये । सचमुच द्रुपद के इस तर्क का द्रोणाचार्य को कोई उत्तर दिखाई नहीं दे रहा था। इस स्थिति में द्रोण ने कुछ शब्दों को बलात् रोका और कहा, “द्रुपद मेरे मन में यदि तुम्हारे लिये प्रेम न होता तो आरंभ में ही तुम्हारा मृत्यु आदेश दुर्योधन, कर्ण को दे देता । वे बन्दी बनाकर नहीं ला सके तो तुम्हें मार कर तो आ ही सकते थे।”

यह सुनकर द्रुपद बोला, ‘‘द्रोण तुम बहुत बड़े भाग्य वाले हो। मात्र एक एकलव्य ने मेरा साथ नहीं दिया, नही ंतो आज स्थिति विपरीत होती। देश के दूसरे भील लोगों को एकलव्य की यह बात पसंद नहीं आई। इस कारण वे सब के सब आज मेरे साथ तुम्हारे विरूद्ध आक्रामक होकर खड़े हैं।’’

अर्जुन ने इन्हीं तथ्यों की पुश्टि की, “गुरूदेव, युद्ध में मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि द्रुपद इतना शक्तिशाली कैसे हो गया ? मैने देखा था द्रुपद तुम्हारी सेना के सभी सैनिक बाण चलाने में तर्जनी और मध्यमा का उपयोग कर रहे थे।”

द्रुपद बोले -‘‘वह मेरी नियमित भृत्य सेना न थी, वे तो द्रोण और उसके शिष्यों को पाठ पढ़ाने का आत्म संकल्प लेकर आवेश में आ गई भीलो की आकंिस्मक सेना थी ।’’

यह सुनकर तो आचार्य द्रोण के समक्ष सारा दृश्य साफ हो गया, “भील जन जातियों ने एकलव्य मेंनिष्ठा के कारण जो निर्णय लिया है वे उसका पूर्ण रूप से पालन कर रहे हैं।”

द्रुपद समझ गया द्रोण सोच में डूबे हैं इसीलिये बोला, “द्रोण तुमने जो किया है उसका प्रायश्चित तो करना ही पड़ेगा। अब तो तुम मुझे भी अपनी मित्रता की परिभाषा से परिचित करा दो।”

यह सुनकर आचार्य द्रोण समझ गये द्रुपद से बातें करना व्यर्थ है। इसीलिये अपने विषय पर आते हुयेबोले, “द्रुपद तुमने कहा था जो राजा नहीं है वह राजा का सखा नहीं हो सकता। इसलिये मैं तुम्हारा राज्य लेकर राजा हो जाता हूँ।‘‘ फिर वे बोले-‘‘ पूरा नही, चलो तुम्हारे वच नों का ही पालन करवा देता हूं । मैं तुम्हाराआधा राज्य ले रहा हूं ! अब द्रुपद तुम गंगा के दक्षिण तट तक के राजा रहो। मैं उत्तर तट का राजा रहूँगा। हां, राजन तुम चाहो तो अब मुझे अपना मित्र समझ सकते हो।”यह कहकर द्रोण ने द्रुपद को मुक्त कर दिया।

000000

द्रुपद गंगा के दक्षिणी तट पर बसे माकन्दी प्रदेश के श्रेष्ठ नगर कार्म्पलय में रहने के लिये चला गया। द्रोण दक्षिण पांचाल (जहां चर्मण्वती नदी बहती है) के राजा होकर अहिच्छत्र नगरी में जाकर रहने लगे।

इस घटना के पश्चात् हर रात आचार्य द्रोण को एकलव्य की बारम्बार स्मृति आती,वे सोचते ‘‘ अच्छा रहा, जो एकलव्य द्रुपद कीक ओर से नहीं लड़ा, अन्यथा उन जैसे धनुराचार्य की सारी प्रतिष्ठा धूल मेंमिल जाती । सचमुच यदि पांचाल नरेश के साथ एकलव्य मिलकर युद्ध करने लगता तो निश्चय ही अंगुष्ठ कटने के पश्चात भी वह ऐसा युद्ध करता कि द्रोण के शिष्य अर्जुन को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ता ओर खाली हाथ लौटना पड़ता। .....अर्थात एकलव्य आज भी मेरे प्रति श्रद्धा रखता है, वह आज भी मेरे इतने बड़े अपराध को लिये क्षमा किये हुये है।....यों तो सम्पूर्ण भील समाज ने धनुषबाण चलाने में अंगुष्ठ के प्रयोग का त्याग कर दिया है।..... इसे मैं अपने प्रति श्रद्धा कहूँ अथवा उनका आक्रोश! आज जो मेरे पक्ष में हैं वे इसे मेरे प्रति श्रद्धा और भक्ति ही कहेंगंे और जो मेरे विपक्ष में चले गये हैं वे इस घटना को उनका आक्रोश मानेंगे। यदि एकलव्य मेरे प्रति श्रद्धा न रखता होता, तो वह भी द्रुपद के पक्ष में युद्ध करने पहुँच जाता।

कुछ भील लोग, पांचाल नरेश के साथ जाकर मिल गये हैं, उनके मन में मेरे प्रति आक्रोश ने जन्म ले लिया है। सम्भव है कल वे अंगुष्ठ के प्रयोग न करने की बात से बन्धित न रहें।उस दिन अर्जुन सब कुछ सुनता रहा। उसने द्रुपद की बातों का कोई खण्डन भी नहीं किया।

अर्जुन समझ गया, ‘‘अंगुष्ठ के अभाव में सफलता पूर्वक लक्ष्यबेध किया जा सकता है।’’

यही बात थी कि अर्जुन जैसा धनुर्धर उन भीलों की प्रशंसा कर रहा था।

आज युद्ध में अर्जुन को चाहे जितना सहन करना पड़ा हो, मुझ द्रोण को आत्म सन्तोष मिल रहा है, ये भील जातियां अपने गौरव, अपनी परम्पराओं की रक्षा करती रहेंगी।

00000

9

द्रोपदी स्वयंबर की सूचना सम्पूर्ण भारत वर्ष के राजाओं को हो गई।

द्रोपदी ! विश्व की अद्वितीय सुन्दरी !! कहते हैं अग्निशिखा सी सुंदर इस युवती ने अग्नि कुण्ड से जन्म लिया है !

बड़े बड़े धनुर्धर उसे पाने की लालसा लगाने लगे। देश के अधिकांश धनुर्धर उस स्वयंवर में भाग लेने का मन बनाने लगे। कुछ को द्रोपदी वरण से भी कोई मोह नहीं था तो भी धनुर्विद्या के परीक्षण का अवसर हाथ से खोनानहीं चाहते थे। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में देश के जन समूह के सामने आने का यह अवसर था।

युवराज एकलव्य भी कोई कम न था। अंगुष्ठ के अभाव में भी वह अभ्यास के बल पर पुनः सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बन गया। देवी वेणु भी अपने अन्तःपुर के धनुर्विद्या की अभ्यास स्थली में अभ्यास करने लगीं थी। युवराज भी उसकी प्रतिभा से प्रभावित थे ही, उसके अभ्यास से प्रेरणा लेकर वे और तीव्र अभ्यास करने लगे।

जब यह बात देवी वेणु को ज्ञात हुई कि पांचाल नरेश अपनी पुत्री द्रोपदी का स्वयंवर कर रहे हैं। देश के सभी राजा, महाराजा, धनुर्धर उसमेंभाग लेने के लिये पहुँच रहे हैं। तो वह हंसती हुई एकलव्य से बोली''युवराज आप द्रोपदी के स्वयंवर में भाग लेने के लिये क्यों नहीं जा रहे हैं ?''

एकलव्य ने कहा, "मैं वहां जाकर क्या करूँगा ?"

प्रश्न सुनकर वेणु बोली, "आप यदि वहां जाने का साहस नही जुटा पा रहे हैं तो आज्ञा दें मैं चली जाती हूँ।"

एकलव्य ठहाका मारकर हँसते हुये बोला, "तब तो द्रोपदी तुम्हें वरण कर लेगी।"

वेणु ने उत्तर दिया, "मुझे वरण नहीं करेगी किन्तु आपको वरण तो कर ही लेगी।"

एकलव्य ने आश्चर्य व्यक्त किया, ''अरे ! देवी आप यह क्या कह रहीं हैं ? अपने लिये सौत की व्यवस्थाकरना चाहती हो ! मैं कुछ समझा नहीं।"

'युवराज, न समझने जैसी कोई बात नहीं है। देश के राजाओं के मध्य, वहां धनुर्धारी होने के अवसर कोहम खोना नहीं चाहते। फिर अनायास ही देश की अद्वितीय सुन्दरी हाथ लगेगी। ऐसा कौन सा राजा है जो उससे विवाह न करना चाहेगा ?'

एकलव्य नेे अपने मन में पनप रही भावना को व्यक्त किया, "सुना है दुर्योधन और कर्ण उसे पाने केलिये व्याकुल हैं। और अर्जुन .....।"

"उस बेचारे का नाम क्यों लेते हो ? वह तो अपने परिजनों के साथ लाक्षाग्रह में भस्म हो गया है। बेचारा अर्जुन .....।'

'अरे ! मैंने तो सुना है अर्जुन जीवित है। पता नहीं कैसे उस लाक्षागृह में से अपनी माँ और भाइयों के साथ निकल भागा ?"

"किन्तु युवराज, उसमें किसके मृत शरीर मिले हैं ?"

"सुना है कोई दूसरे लोग उस लाक्षागृह में आकर ठहर गये थे। वे भी छह लोग ही थे। ये भी छह। यहसंयोग ही रहा है।"

"युवराज यदि अर्जुन जीवित बच गया है तब तो देखना द्रोपदी को वह अपने हाथ से निकलने नहींदेगा। ऐसे अवसर पर आपको वहां अवश्य ही पहुँचना चाहिये। जो भी हो मेरी इच्दा है कि यह विश्व सुंदरी द्रोपदी अर्जुन के यहां नहीं, हमारे यहां हो।

एक तीर से दोहरे लक्ष्यबेध के अवसर को हमे खोना नहीं चाहिये। तभी मेरे मन को शान्ति मिल सकेगी। बोलियेऽ ऽ ऽ जायेंगे न आप ?"

"हमारी धनुर्धर महारानी की यह आज्ञा हो तो भला ऐसा कौन सा एकलव्य होगा जो आपकी बात को अस्वीकार कर पायेगा।"

"देखना युवराज, कहीं आप द्रोपदी को ले आये तो इस दासी को भुला नहीं देना।"

"ऐसी बात है तो मैं वहां नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कोई द्रोपदी हमारी महारानी का मन दुखाये।"

"अरे, अरे ! युवराज, आप यह क्या कहते हैं मुझे चाहे जो सहना पड़े, आप द्रोपदी को निषादपुरम मेंलेकर ही आयेंगे।"

उनकी यह बात जाने कैसे महारानी सलिला ने सुन ली। वे समझ गई, दोनों किस विषय में चर्चा कर रहे हैं। कुछ सोचकर बोलीं, "ये कुरूवंशी एक दूसरे का शीश उतारने में लगे हैं। अगर हम उनके बीच किसी की स्थिति में खड़े हुए तो वे हमें भी छोड़ने वाले नहीं हैं।"

एकलव्य ने माँ को संतुश्ट किया, "माता श्री अंगुष्ठ दान जैसा ही कोई प्रसंग खड़ा हो गया तो मैं विवश हूँ अन्यथा मेरे लक्ष्यबेध को कोई रोक नहीं पायेगा।"

वह माता श्री को सान्तत्वना देकर स्वयंवर में जाने के लिये राज परिवार की भेशभूषा में अपने को

सुसज्जित करने के लिये राजप्रसादके अपने कक्ष में चला गया।

निषादपुरम के सभी लोग देख रहे थे- आज चुपचाप हमारे युवराज सजधज कर पांचाल नरेश के यहां द्रोपदी के स्वयंवर में भाग लेने के लिये जा रहे हैं।

जब एकलव्य पांचाल नरेश के यहां स्वयंवर में पहुँचा, उसने देखा कि स्वयंवर का मण्डप राजकीय वैभव से सुसज्जित है। चारों ओर से इसकी सुरक्षा के प्रबंध कर दिये गये थे। राज द्रुपद के द्वारा आमन्त्रित राजा लोग और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में अपने लिये बनाये हुये विमानों के समान मंचों पर विराजमान थे।

स्वयंवर का प्रांगण खचाखच भर चुका था। उसे प्रांगण के एक कोने में स्थान मिल पाया। वहां बैठ कर उसने प्रांगण के बीचोंबीच बने उस विशाल मंच पर दृष्टि डाली।

उसने देखा एक ंऊंचे और लम्बे से दण्ड के ऊपर गोलाकार थाली नुमा क्षिद्रदार एक यन्त्र लगा है जो अनवरत तीब्र गति से चक्कर काट रहा है। उस थाली नुमा यंत्र के ऊपर जोड़ी गई एक मछली की प्रतिकृति थालीयंत्र की विपरीत दिशा में घूम रही है । नीचे मंच पर एक विशाल धनुष और लगभग सौ बाण रखे हैं । प्रतियोगी को मंच पर बिछे नर्म रोंयेदार बिछौने पर वीरासन में बैठ कर थालीयंत्र के क्षिद्र में से मत्स्य का वेधन करना है ।

इसी समय द्रुपद के द्वारा की जा रही घोषणा राजपुरूशों के कानों में सुनाई पड़ी, "जो वीर इस धनुष पर इन बाणों से उस ऊपर घूमने वाले यन्त्र के छिद्र में से लक्ष्यबेध करेगा वही मेरी पुत्री को प्राप्त कर सकेगा। मेरी पुत्री उसी वीर का वरण करेगी ।'

ठीक इसी समय द्रुपद कुमारी, कृष्णा सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित हाथ में वरमाला लिये हुये मन्द मन्द गति से चलते हुये स्वयंवर मण्डप में आई। लोगों ने मानो अपनी समूची प्राणशक्ति नेत्रों में केन्द्रित कर ली ओर उस विश्वसुन्दरी के दिप दिप करते सुडौल और एक दृष्टि में ही दर्शक को मोह लेने वाले मुख मण्डल और कमल सी सुकोमल हथेलियों को देखने लगे।

इसी समय धृष्टधुम्न ने अपनी बहन द्रोपदी के पास खड़े होकर प्रिय वाणी में कहा, "स्वयंवर के उद्देश्य से पधारे नरपति और राजकुमारो ! ये धनुष है और ये बाण हैं और यह लक्ष्य भी आपके समक्ष है। अब आप की बारी है । आप लोग घूमते हुये यन्त्र के छिद्र में से लक्ष्यवेध कर सकते हैं। इसके लिए हरेक को पांच बाण प्रयोग करने की छूट होगी । जो वीर, रूपवान और कुलीन पुरूष यह महान् कार्य करेगा, मेरी प्यारी बहन उसकी अर्द्धांगिनी बनेगी।"

वह अपनी बहन को सम्बोधित करके बोला, "देखो बहन, इस मण्डप में दुर्योधन, दुर्मख, दुष्प्रषण, विकर्ण,दुःशासन आदि अपने परम प्रिय महान धनुर्धर कर्ण को लेकर यहां आये हैं। यहां अश्वत्थामा, भोज भानूमान,राजा विराट, चौण्ड्रक, शैल्य, शिशुपाल और जरासन्ध आदि सुप्रसिद्ध राजा महाराजा भी उपस्थित हैं। जो इस लक्ष्य को बेध दे, बहन द्रोपदी, तुम उसी के गले में यह वरमाला डाल देना।"

एकलव्य ने देखा कि लगभग इसी समय वासुदेवनन्दन बलराम जी, श्री कृष्ण जी तथा अनेक प्रधान यदुवंशी भी इस महोत्सव को देखने के लिये विशाल प्रांगण के भीतर आय,े क्योंकि भाट लोग उनकी जय जय कार के नारे लगाने लगे । एकलव्य ने धैर्य से श्रीकृष्ण को देखा-तो यह जगत मोहन कृष्ण हैं। सचमुच कैसा श्रेष्ठ और सुडौल बदन है इनका । बिस्मय तो यह िकवे हर परिचित-अपरिचित को देख कर मुस्काये जा रहे थे, जैसे समूचा विश्व इनका मित्र हो ।

स्वयंबर आरंभ होने की घोशणा के बाद एक एक करके अनेक महाबली लक्ष्यबेध करने के लिये उठे। धनुष को झुकाकर डोरी चढाने का प्रयास किया परन्तु अनेक तो डोरी चढ़ाने में ही असफल रहे। यदा कदा किसी ने डोरी कस भी ली तो घूमते थालीयंत्र के क्षिद्र में से उसके बाण नही निकल पाये ।

एकलव्य ने मन ही मन उस लक्ष्य को ध्यान से देखा वह समझ गया कि तनिक सा एकाग्र हो कर वह लक्ष्यबेध कर सकता हैं। वह उठने की तैयारी करने लगा। उसने निश्चय किया कि जो लोग मंच के पास खड़े हैं, वे हट जायें ,फिर वह जायेगा ।

यकायक उसने देखा, राजा शल्य, शिशुपाल और जरासंध आदि असफल होकर लौट रहे हैं। इसी समय सूर्य के समान आभा युक्त कर्ण उठा, उसने धनुष के पास जाकर शीघ्रता से उसे उठाया, और सम्पूर्ण सभा के देखते देखते उसने धनुश की डोरी चढ़ा ली।

वह क्षण भर में ही लक्ष्य बेध देता कि ठीक इसी समय ऊंचे स्वर में द्रोपदी की घोषणा सुनाई पड़ी, "मैं सूत पुत्र को वरण नहीं करूंगी।"

कर्ण तिलमिला उठा उसने वेबसी में एक क्षण को आकाश की ओर देखा फिर उस धनुष को धरती पर पटक दिया।

एकलव्य को कर्ण पर बड़ा क्रोध आया, ''अरे यह तो महामूर्ख है। द्रोपदी इसे वरण करती चाहे न करती इस लक्ष्य को तो यह भेद ही सकता था।''

यह सोचकर एकलव्य के चित्त में आया, "यह उचित ही रहा मेरे उठने में विलम्ब हो गया। मैं कर्ण की तरह धनुष धरती पर पटककर नहीं आता बल्कि लक्ष्यबेध करके आता। मेरे यहां आने का उद्देश्य द्रोपदी का वरण नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भारत वर्ष के राजा महाराजाओं को अपने हस्तलाधव से परिचित कराना है। ये अनूठे लोग हैं ? यदि मैं लक्ष्यबेध कर देता,संभवतः ये मेरा अंगुष्ठ नहीं, शीश ही उतार लेते। कर्ण का भी तो शीश ही उतार लिया। उसन ेलक्ष्यबेध न करके अपनी हीनता का स्वयं ही प्रमाण दे दिया है।'

इसी समय उसे याद हो आई अर्जुन की, आज अर्जुन होता तो निश्चय ही इसे बेध देता। अरे ! यकायक यह कौन खड़ा हो गया ? ये ब्राह्मण वेशधारी युवक, जिसके शरीर के गठन की आभा, मेरे मन को मुग्ध कर रही है। उसकी आंखों का दिव्य तेज मुदित कर रहा है। फुर्तीला शरीर तीव्र गति से उस लक्ष्य की ओर जा रहा है।

उस युवक ने, मंच की पांच बार प्रदक्षिणा की और फुर्ती से धनुष उठा लिया। फिर धनुष पर आत्मविश्वास के साथ बाण चढ़ाया और सभी के देखते देखते छोड़ दिया।

अरे ! यह क्या उसके बाण ने लक्ष्यबेध कर दिया।

उपस्थित महानुभाव हक्के-बक्के से देखते रह गये। किसी को आंखों देखी इस घटना पर विश्वास नहीं हो रहाथा। द्रोपदी वरमाला लिये हुये धीरे धीरे आगे बढ़ी। उसने उसके पास जाकर गले में वरमाला डाल दी। वाद्ययंत्रों के मधुर स्वर सुनाई पड़ने लगे।

उस समय द्रोपदी की सुन्दरता से मुग्ध राजा ललचाते हुये क्रोधित होकर अपने धनुश और बाणों पर हाथ फेरने लगे।

कुछ कहने लगे, ''इन पाँचों ब्राह्मण कुमारों को बन्दी बना लो और द्रोपदी को छीन लो। हमारे जीते जी द्रोपदी हमारी महारानी बनेगी।''

विवाह मण्डप में दूसरे स्थान पर भीड़ में से एक बोला, ''द्रोपदी ने सूतपुत्र कर्ण को वरण करने से इन्कार कर दिया। इस ब्राह्मण कुमार को वरण करने से मना क्यों नहीं किया। उसे इसने वरण कैसे कर लिया ?''

यों एक ओर हो गये सभी राजा-महाराजा, और दूसरी ओर रह गये पाँच ब्राह्मण कुमार।

स्वयंवर मण्डल युद्धभूमि में बदल गया।

शिशुपाल और जरासन्ध उन ब्राह्मण कुमारों को आगे बढ़ने से रोकने के लिये बाणों की दीवार बनाते हुये बोले, ''चुपचाप यहीं खड़े रहो। द्रोपदी को तुम नहीं ले जा सकते।''

शिशुपाल ने क्षिप्र गति से चलते अपने हाथों से बाणों की एक दीवार उन पांचों के चारों ओर खड़ी कर दी ।

यह दृश्य देखकर शेश सभी राजा हतप्रभ से खड़े रहकर उन दोनों योद्धाओं की ओर देखने लगे। विप्र वेशधारी उन पाँचों के उत्तरीय वस्त्रों से चमचमाते अस्त्र शस्त्र दिखने लगे। एक विशालाकाय ब्राहमण युवक ने सामने बाणों से खड़ी दीवार को अपने गदा के तीक्ष्ण प्रहार से तोड़ दिया।

आक्रमणकर्ताओं ने सनसनाते बाणों से उन्हें आगे बढ़ने से रोका। ब्राह्मण वेशधारी स्वयंबर विजेता उस धनुर्धर ने अपने पास उन्हें आने से पूर्व ही बाणों को नश्ट भृश्ट कर ना ष्शुरू कर दिया।

सहसा आक्रमणकर्ता रूक गये ,संभवतः उन सबने अपने हाथ में हल संभाल करउइते बलराम को देख लिया था जो निरस्त्र ब्राहमण कूमारों पर आक्रमण करते राजाओं को कुछ कहने को उत्सुक दिख रहे थे ।

वे अद्वितीय वीर बली पाँचों ब्राह्मण कुमार बड़े आत्मविश्वास के साथ द्रोपदी को लेकर विवाह मण्डप से बाहर चले गये।

उस समय एकलव्य की दृश्टि मोर मुकुट धारी श्रीकृष्ण की ओर गई। वे मन्द-मन्द हंसी बिखेर रहे थे।

एकलव्य को बड़ा अश्चर्य हो रहा था कि आज इस भारत भूमि पर कुछ ब्राह्मण कुमार इतने बली भी हैं।

इस अवसर पर एकलव्य को भगवान परशुराम जी की याद बारम्बार आती रही। जो ब्राहमण होने के बावजूद सहस्त्रों क्षत्रियों पर भारी पड़ते थे ।

वह यह सब दृश्य देखते हुये स्वयंवर मण्डप से बाहर आ गया और भीढ़ में मिल गया ।

लोगों मे चर्चा थी कि यह ब्राहमण वेश धारी और कोई नही बल्कि स्वयं अर्जुन ही है। काया के आधार पर लोगों ने बाकी पाण्डवों को भी पहचानने का विश्वास जताया , और अंत में उन चारों यानी कि युधिश्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव की ओर आश्वस्त रहने का इशारा करते श्रीकृष्ण को देखकर सबको विश्वास हो गया कि अर्जुन ही ब्राह्मण के भेष में था। वही द्रोपदी को वरण करके ले गया।

निषादपुरम लौटते समय रास्ते में एकलव्य द्वन्द्व में उलझ गया ..... स्वयंबर सभा में जब ब्राह्मण और राजाओं में युद्ध होने लगा, तो मैं ब्राह्मणों की रक्षार्थ खड़ा क्यों नहीं हो सका?.....सभवतः मैं समझ रहा था कि लक्ष्यबेध करने वाला कोई साधारण धनुर्धर नहीं हो सकता। उसमें अपनी रक्षा करने की सामर्थ आप होगी। कुछ क्षणों पश्चात यह चर्चा सुनी कि वह सचमुच अर्जुन ही था। वह तो स्वयं ही सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने की उपाधि सुदर्शन चक्र की तरह लिये घूम रहा है। द्रोपदी वरण की प्रतिष्ठा से उसकी साख भारत वर्ष के कौने कौने में पहुँच जायेगी।

अचानक रास्ता चलते में विचारों ने पलट खाई, "मुझे राजाओं का साथ देकर द्रोपदी को ब्राह्मणकुमारों से छीनने में सहयोग करना चाहिये था।.....किन्तु क्या लाभ होता ? स्वयं से ही प्रश्न किया उसने । उस छीनी हुई द्रोपदी को कौन लेता .....दुर्योधन और कर्ण उसे छीनने का प्रयास करते। एक बार फिर स्वयमवर मण्डप युद्धभूमि में बदल जाता। मैंने उचित ही किया जो किसी का भी पक्ष नहीं लिया। मात्र दृष्टा बना रहा।.....किन्तु निषादपुरम में पहुंचकर देवी वेणु को क्या उत्तर दूंगा ? क्या उसे अपने तर्कों से सन्तुष्ट कर पाउंगा? वह तो आरती का थाल सजाये बैठी होगी कि मैं द्रोपदी का वरण करके आ रहा हूं। वह कैसी विचित्र हैं ! विचित्र है उसका चिन्तन ! चिन्तन की उत्कृष्टता नहीं होती तो वह श्रेष्ठ धनुर्धर भी नहीं हो सकती थी।'

रास्ते भर द्रोपदी के रूप सौन्दर्य की झाँकी मन को झन्कृत करती रही। चौड़े भाल पर मुक्ता जड़ित बिन्दी, उसकी खूब बड़ी कजरारी आँखों की चमक, सुन्दर साँवली सलोनी लम्बी नासिका, उसके होंठों की लालिमा,स्निग्ध श्वेत श्याम आमा वाले कपोल, मयूरी के सदृश्य गर्दन, कबूतर के घोंसलों में छिपे दो कपोत शावकों की बाहर झाँकती नुकीली चोंचें की तरह पंख फड़फड़ाकर उड़ने को व्याकुल उरोज, सुंदर लम्बी बांहे और सुडौल देह सभी दर्शकों को मुग्ध कर रहे थे। उनकी हिरणी के सदृश्य चाल, उसके नितम्ब देखते ही बनते थे। प्रभू ने कितना सुन्दर गढ़ा है उसे।मेरी वेणु तो कहीं नहीं ठहरती। कहाँ वेणु की बलिश्ठ भुजायें और कहाँ कोमल कमल के सदश्य उसकी हथेलियाँ, आँखों के सामने से हट ही नहीं रही हैं इसी कारण देश के राजा महाराजा उसे पाने के लिये व्याकुल थे।

एकलव्य सोच रहा था-"जब मैं निषादपुरम में प्रवेश करूँगा, लोग पूछेंगे, कहाँ गई विश्वसुन्दरी द्रोपदी ?"

यही सोचकर वह निषादपुरम की सीमा में प्रवेश करने के स्थान पर सीमा के बाहर ही एक वृक्ष के नीचे बैठकर रह गया।द्रोपदी की छवि उसकी आँखों में समा गई है। स्वयंवर मण्डप में वह निकट से निकली थी। उसे नख से शिख तक देखते ही रह गया। उसके अंग-अंग विधि ने पता नहीं किस शिल्प से गढ़े हैं।''

शाम ढ़ल गई। अंधेरा हो गया। अब बस्ती में प्रवेश करना उचित रहेगा। यही सोचकर वह उठ खड़ाहुआ। धीमे-धीमे कदम रखते हुये आगे बढ़ने लगा।

वह राजप्रासाद के विशाल कक्ष में पहुँच गया। उसे सकुशल आया हुआ देखकर माता श्री की चिन्ता दूर हो गई। उनकी चरण वन्दना के पश्चात् वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ।

विवेकशील व्यक्तित्व मात्र दृश्य और मुखाकृति के भाव देखकर सब कुछ समझ जाते हैं। वेणु उन्हें एकाकी आया हुआ देखकर सब कुछ समझ गई। श्रीमान ने प्रतियोगता में भाग ही नहीं लिया, फिर भी मन कोसन्तुष्ट करने के लिये उसके मुख से निकल गया, "युवराज, मैं यह समझ भी नहीं पा रही हूँ कि आप जैसाव्यक्तित्व प्रतियोगिता में भाग नहीं लेगा।"

"मैं लक्ष्यबेध के लिये उठना ही चाहता था तब तक कर्ण उठकर लक्ष्यबेधने के लिये वहां पहुँच गया।"

"युवराज तो क्या कर्ण ने द्रोपदी .....।"

यह बात काटते हुये वह बोला, "कहां बेचारा कर्ण ! उसे तो द्रोपदी ने यह कहकर पृथक हो जाने केलिये विवश कर दिया कि मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूंगी। द्रोपदी के इन शब्दों ने मेरा भी साहस तोड़ दिया।"

"फिर युवराज"

"मैं समझ गया हूँ तुम परिणाम जानने के लिये व्यग्र हो उठी हो। फिर एक ब्राह्मण कुमार ने वह लक्ष्यबेधकर दिया।"

"क्या कहा युवराज, ब्राह्मण कुमार ने !"

"हाँऽऽ वेणु, उस ब्राह्मण कुमार के लक्ष्य वेध करते ही द्रोपदी ने उसके गले में वरमाला डाल दी।"

"अरे !'

"हाँ क्षत्रिय राजाओं की दृश्टि में ब्राह्मण कुमार और सूतपुत्र कर्ण एक जैसे थे। सभी क्षत्रिय राजा उनपाँचों ब्राह्मण कुमारों से युद्ध करने लगे।"

"युवराज, आपने न्याय का पक्ष नहीं लिया।"

"वेणु वे लक्ष्यबेध करके अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर चुके थे। उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकतानहीं थी। वे सभी राजाओं के मध्य से द्रोपदी को लेकर चले गये।"

"कौन थे वे ? कहीं वे भगवान परशुराम और उनके शिश्य तो नहीं थे ! वे ही ब्राह्मणों में इस ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है।"

"अरे हट ! भगवान परशुराम वृद्धावस्था में किसी को वरण करने क्यों आते ? उन्होने तो युवावस्था मेंयह नहीं किया।' किन्तु लक्ष्यभेद करने वाला व्यक्ति युवा विप्र था।

'युवराज, फिर ऐसा कौन धनुर्धर है इस धरती पर जो.....।'

"मैं स्वयमवर मण्डप से बाहर निकला तो लोगों से ज्ञात हुआ, वह अर्जुन था।"

"अर्जुन !"

"हाँ वेणुऽऽ अर्जुन।'

"मैं जाने क्यों पहले से ही जानती थी कि द्रोपदी को वरण करके अर्जुन ही ले जायेगा इसीलिये तो मैंने वहां आपको भेजा था ताकि उसे पता तो चले कि अंगुष्ठ कटने के बाद भी आप कहीं किसी से कम नहीं।"

“वेणु, अभी वह समय नहीं आया है। देखना किसी दिन वह मेरे हाथों परास्त होगा।”

“देखती हूँ वह शुभ घड़ी कब आयेगी ? अरे ! मैं कैसी हूँ ? आप इतना लम्बा रास्ता तय करके आये हैं,भूखे होंगे। पहले आपको जलपान कराऊँ।’’

ऐसा कहकर वह राजप्रासाद के भोजन कक्ष में चली गई।

द्रोपदी की सुन्दरता आँखों से हट ही नहीं रही है। कभी उसकी सुन्दर आँखें सामने आती हैं कभी उरोज। कभी श्वेत श्याम आभा वाले कपोल चित्त को विकृत करते, कभी नितम्ब। उस दिन से उसे लगता है वह बिना द्रोपदी के क्यों चला आया ? निषादपुरन में उसका मन ही नहीं लग रहा है।

वेणु उसे हर बार की तरह सोचते हुये देखकर बोली, ‘‘अरे ! द्रोपदी ऐसी भा गई है तो चले जाना उसके यहाँ। मेरी कोई बात नहीं है। मैं तो अपना जीवन पुत्र पारस के सहारे व्यतीत कर लुँगी।

यह कहकर वह गोद में बैठे पारस पर हाथ फेर कर दुलार करने लगी।

वेणु के व्यंग बाणों से आहत् एकलव्य ने अपने को संयत किया, ‘‘मैं स्वयंवर में जाना ही नहीं चाहता था। तुम्हीं ने मुझे वहाँ जाने के लिये विवश किया। यह ठीक ही रहा, तुम्हारे भाग्य से संयोग ही नहीं बना। मैं भी क्या करूँ ? उसकी चित्त में स्मृति आ जाती है।’’

‘‘अरे ! ऐसी न होती तो वह पाँच-पाँच पतियों को सन्तुश्ट कैसे कर पाती ? सब एक से एक धुरन्धर हैं।’’

‘‘ क्या कह रही हो, पांच पति ! उसे तो अर्जुन ने जीता है !‘‘

‘‘ आप क्या समझते है ? हमारे पास भी अपने गुप्तचर है । उनने समाचार दिया िकवे ब्राहमणकुमार यानी कि पाण्डव द्रोपदी को ले कर घर पहुंचे तो सहदेव ने उत्साहातिरेक में घर के बंद दरवाजों के बाहर से ही मां को आवाज दी कि ‘‘ मां देखो आज हम क्या लाये हैं ।‘‘ तो प्रतिदिन की तरह उनकी मां यानी कि कुनती ने अंदर से ही कह दिया कि जो भी लाये हो, उस पर पांचों का अधिकार है, मै आज्ञा देती हूं कि पांचा भाई उसे आपस मे ंबांट लो , ओर युधिष्ठिर अकुला कर चीख उठे- मां यह तो देखो कि कहम क्या लाये है । आपने एसी आज्ञ दी कि हम उसका पालन ही नही कर सकते । तो कुनती बाहर आयी ओर खुद भी चौंक उठी, फिर सहसा उसे याद आया कि युधिष्ठिर और भीम तो अर्जुन से बड़े हैं, उनसे पहले छोटे का ब्याह भला केसे संभव है सो बोली-ईश्वर ने मेरे मुंह से अपनी इच्छा को कहलाया है, अब मुंह से निकली बात तो वापस नही आ सकती, सो यह युवती आज से आप पांचों की पत्नी है । और वह द्रोपदी पांच पांच पतियों की भार्या बन गई है ।

एकलव्य यह सुनकर बिस्मित हुआ, फिर भी द्रोपदी से मुग्ध उसका मन द्रोपदी का इस स्थिति में भी पक्ष लेने लगा-वेणु, द्रोपदी में उन सभी को एक सूत्र में बाँधने की इसमें क्षमता है।‘‘

बेणु बोली‘‘ आपका उसके सम्बन्ध में सोचना व्यर्थ का प्रलाप है। हाँ, एक उपाय अवश्य है।’’

उपाय की बात सुनकर एकलव्य ने पूछा, ‘‘क्या उपाय ?’’

‘‘स्वामी, यही आप अर्जुन की आधीनता स्वीकार कर लें। उसके दास बन जायें और इस बहाने द्रोपदीके रूप सौंन्दर्य का पान करते रहें। किन्तु दूसरा रास्ता कठिन है।’’

‘‘कौन सा रास्ता ?’’

‘‘मुझे तो संतोश इस बात से ही मिल पायेगा कि अर्जुन को आप धनुर्युद्ध में परास्त कर दें।’’

‘‘मैं भी हार मान कर बैठने वाला नहीं हूँ। मेरे अन्तर में आज भी उससे लोहा लेने की अग्नि धधक रही है।’’

‘‘स्वामी, आप अपने लक्ष्य से बंधे हैं मुझे यही सन्तोश है।’’

पुत्र पारस वेणु की गोद से खिसककर एकलव्य के पास आ गया और धनुश को पकड़ने का प्रयास करने लगा।

एकलव्य के समक्ष गुरूदेव द्रोणाचार्य की त्रुटियों को जब कोई रेखांकित करता है तो वे उस पर क्रोधित हो उठते हैं ,यह याद आने पर वेणु उन्हें इस सम्बन्ध में समझाते हुये बोली, "युवराज जब कोई आचार्य द्रोण के विरोध में बातें करता है, आप हैं कि उनके सम्बन्ध में कुछ भी सुनना पसन्द नहीं करते। हमें आपका अन्ध भक्त होना उचित नहीं लगता।''

"वेणु, कहीं न कहीं तो अन्ध भक्त तुम भी हो।''

"कहें कहें युवराज कैसे ? आप मुझ पर यह आरोप प्रत्यारोपित कर रहे हैं।"

"वेणु, तुम महारानी गान्धारी की तरह अन्ध भक्त हो।"

"युवराज, यह आप क्या कह रहे हैं मैं महारानी गान्धारी की तरह अन्ध भक्त !"

"सुनिये महारानी गान्धारी ने महाराज धृतराष्ट्र के अन्धे होने पर अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली है। वे अन्धी न होते हुये भी अन्धी बन गई हैं। आज उनके पुत्रों की जो स्थिति निर्मित हुई है वह उन दोनों के अन्धे होने के परिणाम से है।"

"युवराज, मैं समझी नहीं। इन अन्धों से मेरी तुलना कर रहे हैं।"

"वेणु तुम्हें ज्ञात है भीलों की सभा ने उस दिन हमारे अंगुष्ठ के कटने पर जो निर्णय लिया है, तुम भी उस निर्णय का अक्षरशः पालन कर रही हो कि नहीं ?"

"युवराज, आपकी तर्क शक्ति विलक्षण है आप कहाँ का सम्बन्ध कहाँ से जोड़ रहे हैं।"

"वेणु, तुम भी हमारी तरह धनुषवाण चलाने में मध्यमा और तर्जनी का ही उपयोग करने लगीं हो।मैं अनुभव कर रहा हूँ तुम इसमें पारंगत भी हो गई हो।"

"युवराज यह अन्धों का अनुकरण नहीं है। हमारे समाज का सामूहिक निर्णय है। उसे स्वीकार करना मेरा कर्तव्य है। यदि यह सम्पूर्ण समाज का निर्णय न होता तो मैं महारानी गान्धारी की तरह इसे कभी स्वीकार न करती। समाज का निर्णय मानना अंध भक्ति नहीं होती। हमारे जैसा श्रमजीवी समाज तो वैसे भी इतना प्रगतिशील है कि सामने आती परिस्थितियों के अनुकूल निर्णय लेने में हिचकता नहीं है।'

"वेणुऽऽ आप हमें भी अन्ध भक्त न समझें।"

"युवराज फिर कैसा समझें ?"

"अंगुष्ठ के अभाव में यदि हमारे लक्ष्य संधान की क्षमता में कमी रहती तो मै अन्धभक्त अपने

आपको स्वीकार कर लेता। इससे तो हमारी शक्ति और अधिक पुष्ट हुई है। दृढ़निश्चयों की परम्परा ने हमारे आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया है। जब हमें कोई हानि नहीं हुई तो हम दोष किसे दें ?"

"युवराज, दोष भावनाओं का है गुरूदेव का दृष्टिकोण उचित नहीं रहा।"

"उनकी बातें वे जाने, हमें अपना मार्ग प्रशस्त करना है।"

"उनकी बातें वे जाने, युवराज यही बिन्दु हमें सोचने के लिये विवश करता है। यहां भी इन शब्दों के माध्यम से अपने को फिर बचाकर ले जा रहे हैं। एकबार युवराज आप सत्य को स्वीकार तो कर लीजिये।"

"वेणुऽऽ तुम्हारे सच को स्वीकार कर लूँ किन्तु गुरूदेव के चिन्तन से जो तत्व प्राप्त हुआ है उसे किस नदी के प्रवाह में प्रवाहित कर दूँ ?"

"युवराज यह आप गुरूतत्व की बात कर रहें हैं इसे व्यक्तिवाचक संज्ञा से सम्बोधित नहीं कर सकते।"

"तुम ठीक सोचतीं हो किन्तु इस गुरूतत्व का प्रादुर्भाव आदमी के अन्दर काल्पनिक बिम्ब के

आधार पर ही होता है।"

'बस बस युवराज, मुझे आप से यही कहना है वह काल्पनिक बिम्ब कुछ भी हो सकता है।"

हम जिस बिन्दु को मानक मानकर चलते हैं उस मानक बिन्दु को हम जीवन भर विस्मृत नहीं कर

पाते।"

"जिसे विस्मृत नहीं कर पाते उसे सत्य मान कर चलें।''

"मैं तुम्हारी बात को स्वीकार करता हूँ वेणुऽऽ जो बिन्दु चेतना प्रदान करता है उस सत्य को

नकारा तो नहीं जा सकता।"

यह सुनकर वेणु को लगा, ये हार मानने वाले नहीं हैं इसलिये विषय बदलते हुये बोली, "चिन्तन को जिस बिन्दु से उर्जा प्राप्त हो वह बिन्दु अनुकरणीय एवं वन्दनीय हैं।"यह कहते हुये वह एकलव्य के धनुष और बाणों को सम्हालने लगी।

10

पड़ोसी के सुख दुख जानने की प्रवृति मानव की प्रारम्भ से ही रही है। धीरे धीरे राजनीति में निहित स्वार्थों के कारण पड़ोसी के प्रत्येक कार्यकलाप में हम अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं। राजाओं के गुप्तचर की व्यवस्था का जन्म इसी सन्दर्भ में हुआ होगा। हसितनापुर में लोग हमारे बारे में क्या कहते है यह विचार करके निषादराज ने अपना एक गुप्तचर हस्तिनापुर की गतिविधियों को जानने के लिये रखा था।

हां उन्हे पांचाल नरेश के यहां गुप्तचर रखने की आवश्यकता नहीं हुई। क्यों कि वहां की बातें तो उन्हे नाविकों से ज्ञात हो जाती हैं।

पुश्पक नामक गुप्तचर इतना प्रवीण है कि वह लोगों की आकृति देखकर उनके विचार जानने में सफल रहता हैं। उसकी कही हुई बातें असत्य नहीं निकलती हैं।वह आज ही हस्तिनापुर से आया है। उसके उपस्थित होते ही निषादराज समझ गये- "इसे कोई महत्वपूर्ण सूचना देनी होगी तभी वह यहां उपस्थित हुआ है। कोई साधारण सा समाचार होता तो वह पथिकों के द्वारा हमको सूचित कर देता।''

पुष्पक के समायारों पर विचार करने हेतु बहुत दिनों बाद यहां सभा की जा रही है। निषादराज सिंहासन पर विराजमान हो चुके थे। मन्त्री चक्रधर ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया। एकलव्य ने भी अपना आसन ग्रहण किया। पुत्रवधू वेणु को भी इस सभा में सम्मिलित होने के लिये कह दिया। वे सभा कक्ष के पास वाले छोटे कक्ष में बैठकर यहां की समस्त बातें सुन सकेंगी। रानी सलिला आज सिंहासन पर न बैठकर पुत्र वधू के पास बैठी हैं। पुष्पक अपनी बात प्रारम्भ करते हुये बोला, "देव, आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि द्रोपदी के विवाह के पश्चात कौरवों ने पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। पाण्डवों ने कुछ ही दिनों में अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ को वैभवशाली बना डाला।उसके पश्चात ही श्री कृष्ण ने अपनी अविवाहित बहिन सुभद्रा का हरण अर्जुन के द्वारा करवा दिया। कृष्ण के परिजन नाराज तो हुये पर श्री कृष्ण के समझाने पर मान गये। इस प्रकार अर्जुन और सुभद्रा का विवाह करा दिया। समय से उनके यहां अभिमन्यु नामक पुत्र का जन्म हो गया। इसके पश्चात पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया।"

"पुष्पक, हमें ज्ञात है राजसूय यज्ञ में बुलावा हमारा भी आया था लेकिन हम वहां उपस्थित नहीं हो सके। सुना है वहां श्री कृष्ण ने अपनी बुआ के लड़के शिशुपाल का वध कर दिया किन्तु श्री कृष्ण जी के कारण ही वह राजसूय यज्ञ सम्पन्न हुआ।'

"देव, बात अब तो बहुत ही आगे बढ़ गई है। पाण्डवों की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर शकुनि मामा के सहयोग से दुर्योधन ने विदुर जी को भेजकर द्यूत के रसिक युधिष्ठिर को द्यूतक्रीड़ा के लिये आमंत्रित किया। शकुनी ने छल के पांसों की सहायता से पाण्डवों को पराजित कर दिया। छल से द्रोपदी को भी दांव पर लगवा कर कौरवों द्वारा वह भी जीत ली गई।"

यह सुनकर जैसे सबको सांप सूंघ गया । हस्तिनापुर जेसी जगह एंसा पाप हुआ ! एक नारी को निष्प्राण वस्तु की तरह दांव पर कैसे लगा दिया गया । चकित होते एकलव्य ने कहा, "क्या कहा ? द्रोपदी जेसी विश्वसुंदरी को जुआ पर दांव में लगा दिया गया ओर उन दुष्ट कौरवों ने उसे जीत भी लिया है फिर कया हुआ पुष्पक ?.....संभवतः द्रोपदी दुर्योधन की दासी बन गई होगी?"

"युवराज वह दासी ही नहीं बनी, उसे भरी राजसभा में घसीटकर लाया गया। उसे निर्वस्त्र करने का प्रयास किया गया।"

"हरे रामऽऽऽऽ रामऽऽऽऽऽ, ये क्या कहते हो गुप्तचर ! कौरवों की सभा में भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे लोग भी तो होंगे। उनके रहते.....।"

"हां देव, उनके रहते द्रोपदी का चीर खींचा गया। उन्हीं के समक्ष उसे नग्न करने का प्रयास किया गया किन्तु चीर खींचते में पता नहीं कैसे दुःशासन परास्त हो गया, लोग कहते हैं कि अचानक कृष्ण वहां उसकी साड़ी को छीनने से रोकते देखे गये ओर कृष्ण के भय से उसने द्रोपदी की साड़ी छोड़ दी। इसके पश्चात धृतराष्ट्र और गान्धारी ने उसे दासत्व से मुक्त कर दिया।"

यह बात सुनकर एकलव्य ने उत्सुकता से पूछ लिया, "अब तो पाण्डव इन्द्रप्रस्थ चले गये होंगे ?"

"अरे नहीं युवराज, उस घटना के पश्चात दूसरे दिन पुनः द्यूतक्रीड़ा का चक्र चला। युधिष्ठिर फिर से हार गया। शर्त के अनुसार पाण्डवों को तेरह वर्ष के लिये वनवास दे दिया गया। तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में व्यतीत करना होगा। यदि उन्हें उस तेरहवे वर्ष में खोज लिया गया तो उन्हें फिर उसी क्रम से तेरह वर्ष व्यतीत करना पड़ेगे।"

गुप्तचर की बात पर मनन करते हुये एकलव्य ने कहा, "पिताश्री, इसका अर्थ तो यह है कि पाण्डव अब कभी अपना राज्य प्राप्त नही कर पायेंगे।"

"वत्स, इन क्षत्रियो की बुद्धि, शक्ति के मद में इतनी भ्रमित हो गई हैं कि ये एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे है।"

यह सुनकर देवी वेणु ने अपना प्रश्न माता श्री सलिला के द्वारा कहलवा दिया।

महारानी जी सभा में आकर पूछने लगीं, "देव, आपकी पुत्रवधू पूछती हैं ऐसी स्थिति में हमारा क्या दायित्व है ?"

इसके उत्तर में वे तीव्र स्वर में बोले जिससे सभी उनकी बात सुन लें- "हमें भी सचेत रहने की आवश्यकता है। क्या पता ये कौरव, पाण्डव हमारे ऊपर कब आक्रमण कर दें ?"

अब एकलव्य ने प्रश्न किया, "गुप्तचर, आपने गुरूदेव द्रोणाचार्य के सम्बन्ध में कुछ नहीं बतलाया।"

"युवराज द्रोणाचार्य तो अब कौरवों के साथ हो गये हैं। सुविधा की याचना करने वाला व्यक्ति सुविधा का त्याग कैसे कर सकता है। वे जैसा अन्न खाते हैं उनका मन भी वैसा ही हो गया है। वे अपनी राजधानी अहिच्छत्र में पड़े रहते हैं। उनके मन में द्रुपद से द्वेष की भावना समाप्त नहीं हुई है। द्रुपद की पुत्री द्रोपदी पाण्डव पत्नी है, इसीलिये सम्भव है वे पाण्डवों से दूर होते जा रहे हैं। द्रोण के कहने पर ही तो अर्जुन द्रुपद को बन्दी बना कर लाया था।''

यह सुनकर सभी लोग कौरव, पाण्डवों और द्रोणाचार्य के संबंध में गहराई से विचार करते रहे , फिर पुष्पक निषादराज हिरण्यधनु से आज्ञा लेकर वापस हस्तिनापुर चले गये।

000

समाज का सुगठित रूप जैसे ही सामने आया होगा, वैसे ही पर्वों की परम्परा शुरू हो गई होगी। आज भी पर्व मानव की वृतियों को उदात्त बनाने में लगे हैं। भील जातियों में शिवरात्रि का पर्व श्रद्धा और भक्ति भाव से मनाने की परम्परा रही है। पर्व आने के दो चार दिन पूर्व से ही लोग पर्व मनाने की तैयारी करने लगते हैं। उस दिन छोटे बड़े, स्त्री पुरूष सभी व्रत रखते हैं। इस दिन फलाहार पर ही दिन व्यतीत करना पड़ता है। शिवरात्रि के दिन प्रातः से ही नगर भर के लोग इन्द्रन नदी पर पहुँच जाते हैं। निषादपुरम में जो एकमात्र शिवालय है वहीं

इस दिन मेला लगता है। पर्वों के अवसरों पर आस्थायें केन्द्रित हो जाती हैं। समूह कीआस्थाओं का वेग जब एक हो जाये, उस समय निश्चय ही कोई सत्ता वहां प्रत्यक्ष अनुभव में आती हैं।

दुकानदार प्रातः से ही फलाहार की वस्तुयें, विभिन्न प्रकार के कन्दमूल फल विक्रय करने के लिये उपस्थित हो जाते हैं। कुछ लोग बच्चों के मनों को प्रमुदित करने वाले खिलौने लेकर उपस्थित होते हैं। कुम्हार मिट्टी के खिलौनों को रंगों से रंगकर लाते हैं। ये बच्चों के मन को आकर्षित करने में सफल रहते हैं। कुछ बढ़ई लकड़ी के खिलौनों को लेकर आते हैं। तरह तरह के लकड़ी के खिलौने देखने को मिलते है। ये खिलौने मानव अथवा पशुओं की आकृति के बने होते हैं। कुछ व्यापारी भी इस अवसर पर तरह तरह के धनुष बाण लेकर उपस्थित होते हैं।

लोग बच्चों को धनुषबाण चलाना इसी शुभ दिन से प्रारम्भ कराते हैं, इसी कारण धनुषबाणों की बिक्री अच्छी हो जाती है।

यह सब देखकर एकलव्य को याद आती है उस दिन की जब पिताश्री निषादराज ने मेले में से, क्रय करके शगुन के तौर पर धनुष बाण दिये थे। कुछ लोग एक दूसरे के बच्चों को धनुषबाण उपहार में देते हैं। छोटे छोटे बच्चे धनुष बाण लेकर इतने खुश दिखाई देते हैं, मानो सभी दिग्विजय करने के लिये तैयार हो रहे हैं।

उस दिन वही पर्व था ।

लोग स्नान करने के बाद शिवलिंग पर जल चढ़ाने के लिये, जल पात्रों मे जल लेकर आ रहे हैं। शिवालय पर यदि कोई कमी दीखती है, तो वह है आचार्य की। निषादबन्धु अपने अपने मन के अनुसार शंकर जी की प्रतिमा का अभिषेक कर रहे हैं। कुछ दूध से अभिषेक कर रहे हैं और कुछ दही और शहद की मिठाई से। उनके पास अभिषेक के मन्त्रों के नाम पर एक ही मन्त्र है ''ओऽम् नमः शिवाय।''

आचार्य की परम्परा यहाँ उस दिन से समाप्त कर दी गई जिस वर्ष एकलव्य अपना अंगुष्ठ गुरूदक्षिणा में प्रदान करके आया, उस वर्ष से कुछ लोग, आचार्यों से कर्मकाण्ड कराने में डरने लगे हैं। यदा कदा कोई आचार्य की वेषभूषा में इन्द्रन के घाट से निकलता है तो लोग उसे भी शंका की दृष्टि से देखने लगते हैं। लोगों को लगता है कि हम कहीं इस आचार्य के पास गये और आचार्य जी ने कहीं हमारा अंगुष्ठ दक्षिणा में मांग लिया तब हम क्या करेंगे ? इसीलिये न रहेगा बांस और ना बजेगी बांसुरी।

शिवरात्रि के अवसर पर मन्दिर की व्यवस्था के लिये निषादपुरम का वयोवृद्ध व्यक्ति ही, प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी लोगों की पूजा अर्चना के कार्य में सहयोग कर रहा था।

जब राजपरिवार के लोग उस मन्दिर की देहरी पर पहुंचे, पुरम् के सभी लोग उनके लिये रूक गयें। निषादराज हिरण्यधनु और महारानी सलिला द्वारा की गई पूजा अर्चना के समय पुरम् के सभी लोग भक्ति भाव से दर्शन करते रहें।

दोपहर ढ़ले निषादराज राजप्रासाद के लिये चले। निषादपुरम के कुछ वृद्ध जन भी प्रतिवर्ष की तरह उनके साथ ही निकल पड़े। एकलव्य और मन्त्री चक्रधर भी उनके साथ चले।

वे सब जब राजप्रासाद के विशाल कक्ष में पहुंचे, प्रतिवर्ष की तरह कुछ लोग भंग ठन्डाई छानने लगे थे। उनके पहुंचते ही प्रतिवर्ष की तरह फलाहार आ गया। बड़े बड़े पात्रों में सेवक दूध लेकर आ गये। सभी ने फलाहार किया। इसके पश्चात् दूध पिया। भंग घोटने वाले भंग घोटने में लगे हैं। बादाम, पिस्ता और मुनक्का की घुटाई पृथक से चल रही है। अब सभी की दिन ढ़ले तक के लिये बैठक जम गई। सभी अपने अपने अनुभव प्रतिवर्ष की तरह सुनाने को व्याकुल दिखाई देने लगे।

मनोहर बोला, "पाण्डव इन दिनों वनवास में अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। आने जाने वाले यात्रियों से हम नाविकों को उनके समाचार मिलते रहते हैं। इन दिनों एक घटना बड़ी ही विचित्र घटित हुई है।"

सभी उस विचित्र घटना को सुनने के लिये एकाग्रचित्त हो गये। एक ने व्यग्रता व्यक्त करते हुये कहा, "काका इधर उधर की बातें न करके सीधे सीधे प्रसंग सुनाने में लग जायें।

मनोहर ने प्रसंग पूरा करने के लिये बोलना शुरू किया, "एक दिन की बात है, वन भ्रमण करते अर्जुन को एक जंगली वाराह सूअर दिखाई पड़ा उसने उसका पीछा किया। उसने अपने गाण्डीव धनुष पर सर्पाकार बाण चढ़ाकर छोड़ना चाहा। इसी समय एक भील सामने आ गया। वह हमारे युवराज की तरह धनुष बाण लिये था।

वह भील अर्जुन को बाण मारने से रोकते हुये बोला, मैं पहले से ही इसे मारने का निश्चय कर चुका हूँ। इसीलिये तुम इसे मत मारो।"

अर्जुन ने उस भील की बात की चिन्ता नहीं की और बाण छोड़ दिया। उस भील ने भी अपना बाण चलाया। दोनों बाण उस सूअर के शरीर पर जाकर टकराये। यह सुनकर निषादराज के मुख से निकला, ''आश्चर्य है।"

"हाँ देव, उसके पश्चात् वह सूअर मर गया। अर्जुन को सन्देह हो गया कि यह तो निश्चय ही एकलव्य हो सकता है। बाण चलाने में यह मध्यमा और तर्जनी का उपयोग कर रहा है।'

उधर उस भील युवक को सुअर के मरने पर क्रोध आ गया। बोला, "मैं इसे पहले मारना चाहता था। तुमने इसे मार दिया। अब मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

अर्जुन ने बाणों की वर्शा प्रारंभ कर दी। वह युवक उसके बाणों को नष्ट करने लगा। यह देखकर अर्जुन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि एकलव्य अंगुष्ठ कटने के पश्चात इतना शक्तिशाली हो गया। सारी सभा इस प्रसंग को एकाग्रचित्त होकर सुन रही थी। बात को आगे बढ़ाने के लिये निषादराज ने उत्सुकता व्यक्त की, "इसके पश्चात क्या हुआ ?"

यह प्रश्न सुनकर वह प्रसंग को आगे बढ़ाने लगा, "अब दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। घूंसे चलने लगे। उस भील युवक ने अर्जुन को धराशायी कर दिया। वह रक्त रंजित हो गया।

एकलव्य के मुंह से शब्द निकले, "काकाश्री आप बात को बनाकर कह रहे हैं। मैं तो कभी अर्जुन के सामने गया नहीं ।"

उसने एकलव्य की बात पर ध्यान दिये बिना और उस का प्रतिरोध किये बिना कहना शुरू कर किया, "थोड़ी देर के बाद अर्जुन को चेतना आयी। इस स्थिति में उसने अपने इश्ट को याद किया उसने मिट्टी का एक शिवलिंग बनाया और शरणागत होकर उसकी पूजा करने लगा। अर्जुन को लगा जो पुष्प उसने शिवलिंग पर चढ़ाये हैं वे उस भील युवक के सिर पर पहुंच गये हैं और उस शिवलिंग के स्थान पर वह भीलयुवक आ खड़ा हुआ है। वह चकित हो उठा। हुआ यह था कि उसकी पूजा से शंकर जी प्रसन्न हो गये थे और वे अर्जुन की परीक्षा लेने आये थे, अर्जुन का अभिमान खण्डित करके भील रूप से वे शिव रूप में आ गये। उन्होंने अर्जुन को मूल रूप में अपने दर्शन दिये। अर्जुन ने उन्हें प्रणाम किया। बन्धुओं सुना है, उन्होंने उसे प्रसन्न होकर कई अस्त्र, शस्त्र एवं पाशुपत अस्त्र प्रदान कर दिया हैं।"

उसकी बात पर वयोवृद्ध सुम्मेरा ने कहा, "हमें गर्व है अर्जुन को सीख देने के लिये ही सही, भील के वेष में शंकर जी ने उसे दर्शन दिये हैं। अर्जुन को उन्होंने प्रतीक रूप में हमारे युवराज एकलव्य की शक्ति से परिचय करा दिया हैं।"

निषादराज बोले, "हम आचार्यो की तरह, शिवलिंग का आज के दिन अभिषेक भी नहीं कर पाते। शंकर जी की हम पर अनन्य कृपा है। अब अर्जुन जीवन भर हमारे राज्य की तरफ आंख उठाकर नहीं देख सकेगा।"

सभी लोग शंकर जी के गुणगान मन ही मन करने लगे। एकलव्य मन ही मन सोच रहा था, "निश्चय ही शंकर जी की हमारी जाति पर असीम कृपा है।"

इस समय एक दूसरा वृद्ध जिसे लोग निषाद मुनि के नाम से सम्बोधित करते हैं। वह सभा में खड़े होते हुये, निषादों के गौरवमयी इतिहास का संक्षेपीकरण करते हुये बोला, "हम निषादों का इतिहास गौरवशाली है। श्री राम के युग में श्रृंगवेरपुर में निषादों का राज्य था। हम पर उनकी अपार कृपा रही हैं। भक्त शिरोमणी शबरी की चर्चा तो आज सम्पूर्ण भारतवर्श में बड़े प्रेम से की जाती है। निषाद के कारण ही महर्शि वाल्मीकि को रामायण महाकाव्य की रचना की प्रेरणा हुई।''

बात को आगे बढ़ाते हुये इसी समय तीसरा वृद्ध बोला, "हम श्रृंगवेरपुर से यहां आये हैं। हमारा वंश युगों युगों से गौरवशाली रहा हैं। हमें अपने वंश पर गर्व है।"

इस समय तक भंग और ठण्डाई तैयार हो चुकी थी। प्रत्येक को उनकी इच्छा के अनुसार पहले भंग का गोला बांट दिया गया। इसके पश्चात पात्र भर भर कर ठन्डाई का वितरण कर दिया गया। सभी भंग और ठन्डाई का पान कर मस्त होने लगे।

दिन बीता और सांझ हो गयी । अंधेरा गहराने लगा । सभा विसर्जित हुई ।

शाम से ही रात्रिजागरण के लिये लोग शिवालय पर ही एकत्रित होने लगे। निषादराज को याद नहीं है कि यहां कब से रात्रि जागरण का कार्यक्रम सम्पन्न होता चला आ रहा है। पुरूष और स्त्रियाँ शिवालय को घेर कर बैठ गये। बैठने के लिये उन्होंने अपने साथ कुशासन बिछा लिये। शिवालय के एक ओर लोक नृत्यों का कार्यक्रम शुरू हो गया। एक समूह लोकगीत सुनाने लगा। कुछ भजन कीर्तन के दल अपने अपने राग अलापने लगे। निषादराज भी अपने परिवार के साथ रात्रि व्यतीत करने आ गये। इस अवसर पर न कोई राजा दिखता था न प्रजा। सब समान भाव से भक्तिभाव में डूब जाना चाहते।

प्रतिवर्ष की तरह मनोहर शिवरात्रि के पर्व की कथा कहने के लिये खड़ा हो गया। यह देखकर सभी ने अपने अपने राग रंग बन्द कर दिये। सभा में स्तब्धता छा गई। वृद्ध मनोहर ने कहना शुरू किया, "आप लोगों को गर्व होना चाहिये कि शिवरात्रि पर्व के प्रारम्भ से ही हम भीलों से उसका सम्बन्ध रहा है। इसी कारण यह हमारा परम प्रिय पावन पर्व है.....सुनो मैं आपको कथा सुनाता हूँ-

एक समय की बात है एक भील जाति का शिकारी अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिये शिकार करने निकल पड़ा। सारे दिन इधर उधर यहां वहां भटकता रहा। उसे कोई शिकार नहीं मिला। वह खाली हाथ घर कैसे जाये ? इसलिये वह और आगे निकल गया। अन्त में एक हिरणी दिखी, उसके पीछे पीछे भागते भागते उसे रात्रि का समय हो गया। अब वह रात्रि व्यतीत करने के लिये एक वृक्ष पर चढ़ गया। वह वृक्ष बेलपत्र का था। उस वृक्ष के नीचे एक शिवलिंग पत्तों से ढका था। उस वृक्ष पर बैठने से उस बिल्बपत्र उस शिवलिंग पर गिरने लगे।

हाँ तो भाइयो, फिर क्या हुआ ? इसी समय वही हिरणी वहां पर फिर आ गई। उस शिकारी ने उसे अपना लक्ष्य बनाकर धनुष पर बाण चढ़ाकर प्रत्यंचा खींच ली। यह देखकर वह हिरणी बोली, "आप मुझे अभी न मारें। मैं अपने बच्चों से मिलकर आती हूँ उस समय आप मुझे मार सकते हैं।"

उस शिकारी ने सोचा, "यह हिरणी मरने के लिये कभी लौटकर नहीं आयेगी।....लेकिन अगर यह लौट कर नहीं आती तो मैं क्या यकरता , इसलिए चलो इसकी बात को परख लेते है। "

वह भील शिवलिंग की प्रतिमा के ऊपर वाले वृक्ष पर बैठा था। वह बार बार हिल हिल उठता और हिरणी का रास्ता देख उठता था। उसकी पूजा का क्रम, बारम्बार बेलपत्र गिरने से पूर्ण होता जा रहा था। इस समय भी उसके इघर उधर हिलने से बेलपत्र गिरे। उसका दृष्टिकोण बदल गया। उसके मुख से निकल गया, "अच्छा चली जाओ लेकिन आ जाना, नहीं तो मेरे बच्चे भूख से मर जायेंगे।"

वह हिरणी चली गई। उसके चले जाने के पश्चात हिरणी के दो छोटे छोटे बच्चे अपनी माँ को खोजते हुये वहां आ गये। उन्हें देखकर वह उनको भी मारने को तैयार हो गया। यह देखकर वे बोले, "आप हमें अभी न मारें। हम अपनी माँ से मिलकर आते है तत्पश्चात् आप हमें मार सकते हैं।"

उस शिकारी को जाने क्या हो गया कि उसने उन्हें भी जाने दिया। कुछ समय पश्चात् ही वहां एक हिरण आ गया। उसे देखकर उसने फिर अपनी प्रत्यंचा खींच ली।"

यह देखकर वह बोला, "भइया आप मुझे अभी न मारें। मै अपनी पत्नी और बच्चों से मिलकर आता हूँ।उस समय आप मुझे मार सकते हैं।"

यह सुनकर शिकारी ने सोचा, "सब यही कहकर गये हैं लेकिन लौटकर कोई नहीं आया है। जो हो चाहे मेरे बच्चे भूखे ही मर जायें। ये आयें या न आयें, इसे भी जाने देता हूँ।" यह सोचकर उसने कह दिया, "अच्छा तुम भी चले जाओ लेकिन जल्दी वापस आ जाना।"

वह भी वापस आने की कहकर चला गया।

उसका अप्रत्यक्ष में शिवरात्री जागरण और पूजा अर्चना का कार्यक्रम सहज में ही निपटता चला गया। प्रातःकाल के समय वह क्या देखता है कि वह हिरण अपने परिवार के साथ वहां उपस्थित हो गया। यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ, ये अच्छे मूर्ख हैं ! पूरे परिवार के साथ मरने के लिये चले आये। लेकिन मैं मूर्ख नहीं हूं जो इन वचन के पक्के निरीह जानवरों को मार डालूं । बंधुओ यह महादेव जी कीकृपा थी शिवपूजा से भील का दृष्टिकोण बदल गया था। उसने उन सबको अभय दान दे दिया, "तुम लोग जाओ मेरे बच्चों का जो भोले बाबा चाहेंगे वही होगा।"

इसी समय उस शिकारी को लगा, “हिरण परिवार के स्थान पर शंकर जी साक्षात् रूप धारण करके उसके सामने उपस्थित हो गये हैं।”

उसी दिन उस शिकारी ने निश्चय कर लिया अब मैं वन्य प्राणियों की हत्या कभी नहीं करूंगा और वन्य प्राणियों की हत्या करने वालों का विरोध करूंगा।

आप सभी को ज्ञात होगा हम बिना उद्देश्य के किसी वन्य प्राणी की हत्या नहीं करते। हमको शिवरात्रि के जागरण से यही शिक्षा लेकर यहां से जाना चाहिये। आप सोच लें यदि आप वन्य प्राणियों की रक्षा करने का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं तो ही आपका शिवरात्रि पर्व मनाना सार्थक है। ईश्वर ने हर प्राणी को इस धरा के संतुलन के लिए बनाया है, उस संतुलन को क्यों बिगाड़ें ! “

उपस्थित जन समूह मन ही मन प्रतिज्ञा करने लगा था, “अब हम बिना किसी उदेश्य के किसी वन्य प्राणी की हत्या नही करेगे।’

0000

11

“ जिसके लिये हम जी जान से अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये उद्यत रहते है, वही हमारे सामने युद्ध करने के लिये शस्त्र लेकर खडा हो जाय। कैसा लगेगा उस समय ? हमें लगेगा, उसे हराकर अपने अस्तित्व का एक बार और बोध करा दें।” आचार्य द्रोण बिस्तर पर पड़े पड़े यही सब सोचने लगे कि हम राजसभा और आचार्यों को लेकर बैठे रहे। पाण्डवों के तेरह वर्ष पूर्ण होने की गिनती नहीं कर पाये। युद्धभूमि में यदि भीष्म पितामाह से यह प्रश्न न किया जाता तो शायद उस समय भी हमें काल का बोध न हो पाता। अरे ! जिसे समय

का बोध न रहे उसे कभी सफलतायें न मिली हैं, न मिल पायेंगीं। जब हम उनसे विराट के यहां युद्ध करने पहुंचे, उस समय तेरह वर्ष से पांच माह और बारह दिवस का समय अधिक हो गया। इसी कारण अर्जुन गाण्डीव धनुष के साथ सामने आया और कृपाचार्य को युद्धभूमि से हटना पड़ा।

उस समय अर्जुन अपना रथ मेरे रथ के पास ले आया। उसने मुस्कराकर मुझे प्रणाम किया और कहने लगा, "हम तेरह वर्ष से वन वन भटकते रहे हैं। अब हम सब शत्रुओं से बदला लेना चाहते हैं, आपको हम लोगों पर क्रोध नहीं करना चाहिये।"

इस तरह की प्यार भरी बातों से अर्जुन ने मुझे युद्धभूमि से हटाना चाहा। क्या कहने लगा था अर्जुन, "गुरूदेव, आप जब तक मुझ पर पहले आक्रमण नहीं करेंगे तब तक मैं आप पर आक्रमण नहीं करूंगा।"

वार्तालाप में कितना प्रवीण हो गया है अर्जुन। उसने मुझे पहले आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। युद्धभूमि में मैं कैसे पीछे हटता ? मुझे उस पर विवश होकर पहले आक्रमण करना पड़ा। मेरे बाण अर्जुन तक पहुंच पात,े तब तक उसने शीघ्रता से बाण चलाकर उन्हें ध्वस्त कर दिया। उसके पश्चात् तो अर्जुन ने अनेक बाणों की वर्षा करते हुये अपना अदभुत हस्तलाधव दिखलाया। उसने मेरे घोड़ों को घायल कर दिया। आज विश्व में अर्जुन के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हैं जो मेरा सामना कर सके।

अर्जुन ने मेरे रथ को बाणों से ढंक दिया मेरा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। सारथी मुझे युद्धभूमि से बाहर ले आया। इसके पश्चात तो अर्जुन का साहस और बढ़ गया। उसने अश्वत्थामा और कर्ण आदि को भी युद्ध भूमि में परजित कर दिया।

उन्होंने करवट बदली। वे फिर सोचने लगे, "आज यदि एकलव्य का अंगुष्ठ न कटवाया

होता तो इस धरती पर मेरे शिष्यों में एकलव्य ही होता जो अर्जुन को परास्त कर सकता। सुना है वह भीमसेन की तरह गदा संचालन में प्रवीण हो गया है। आज एकलव्य मेरी इस दुर्दशा के बारे में सुनेगा तो आग बबूला हो जावेगा। मेरा बदला चुकता करने के लिये युद्धभूमि में पहुंच जायेगा किन्तु उस समय मेरी अपनी बुद्धि ही मारी गई। कितनी श्रद्धा और भक्ति है उसमें। मैंने उसका अंगुष्ठ ही नहीं लिया बल्कि उसके श्रद्धा और विश्वाश्स को भी छीन लिया। आने वाले समय में लोग गुरू के प्रति श्रद्धा और विश्वास पर सन्देह करेंगे। यह सब मेरा ही दोष हैं। एकलव्य का अंगुश्ठ मैंने शायद इसलिये गुरूदक्षिणा में ले लिया क्योंकि वह शूद्र था या यों कहें कि वनवासी था, आदिवासी था, असंस्कारी था। यदि देश में इस शिक्षा पद्धति का चलन चलता रहा तो देखना, गुरूओं की यही दशा होगी, जो आज मेरी हो रही है। मुझे अपने शिश्यों को दया, प्रेम और भ्रातृभाव की शिक्षा देना चाहिये थी। मैं अपने शिश्यों को, इन गुणों के महत्व को बतलाये बिना शस्त्रों से सुसज्जित करता चला गया। क्या परिणाम निकला है ? आज कौरव और पाण्डव आमने सामने खड़े हैं, इसमें दोष किसके मत्थे मढ़ा जायेगा ? निश्चय ही सारे वातावरण में जहर घोलने का कार्य मुझसे ही हुआ है। आज मेरी ही बुद्धि कुन्ठित हो रही हैं। मैं न्याय का पक्ष भी नहीं ले पा रहा हूँ। आताताई कौरवों के पक्ष में युद्ध करने के लिये खड़ा हो रहा हूँ। इनमें कहीं कोई मर्यादा नहीं बची है। पिता-पुत्र, गुरू-शिष्य, भाई-भाई सभी एक दूसरे को शत्रु की तरह देखने लगे हैं। पाण्डवों में अभी भी धर्म कर्म शेष हैं। मैं हूँ कि सुविधा भोगी होने के कारण पाण्डवों के साथ नहीं जा पा रहा हूँ। पता नहीं किस यन्त्र ने मुझे कौरवों से बांध दिया है। मैं केवल अपनी ही व्यथा क्यों कहूँ ? भीष्मपितामाह, कृपाचार्य आदि भी तो इस विवशता के कारण उनके पक्ष में हैं। कोई भी व्यक्ति दलित और अधिकार वंचितो की बात नहीं करता है। सब लोग क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्यों की ही चिन्ता करते हैं।

असत्य सत्य को कैद करने के लिये, उसके दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया हैं। वह कभी सत्य को कैद कर पायेगा इसमें सभी को सन्देह है फिर भी लोग जाने क्यों असत्य के घेरे में बंधे हुये हैं। सान्दीपनी आश्रम की शिक्षा पद्धति, मुझ द्रोण के चित्त में द्वन्द उपस्थित करती रहती है। वहां से प्रेम और सौहार्द्र भारत वर्ष के कोने कोने में पहुँच रहा हैं और यहां आपस में द्वेषभाव बढ़ते जा रहे हैं। यदि भारतवर्ष को सुदृढ़ बनाना है तो इस तरह की शिक्षा पद्धति को बन्द कर देना चाहिये। तो ही इस देश का सांस्कृतिक अस्तित्व शेष रह पायेगा।

भारतवर्ष में उठ खड़ी हो रही इस नई चेतना का हमने अंगुष्ठ ही कटवा लिया। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह हे कि इस घटना के पश्चात भील जातियों के अंगुष्ठ प्रयोग न करने के निर्णय ने तो, एक नई चेतना ही उत्पन्न कर दी। रहस्य की बात हे कि बड़े वीर कहे जाने वाले दुर्योधन और कर्ण द्रुपद को बन्दी बनाकर क्यों नहीं ला पाये ? इसका एक मात्र कारण जो मेरी समझ में आ रहा है वह है, इन भील जातियों ने द्रुपद का साथ दिया।

यदि एकलव्य भी उसका साथ दे देता तो मैं जीवन भर द्रुपद को अपनी शक्ति का बोध नहीं करा पाता। इतने सारे घटनाक्रम के बाद भी आज एकलव्य में भक्ति भाव है। आश्चर्य की बात ही है।

इसी समय कृपी ने कक्ष में प्रवेश किया। उसने देखा पति चिन्तन में हैं। यह सोचकर बोली, "स्वामी अब सोचते रहने से क्या लाभ ? दुर्योधन युद्ध की घोषणा कर चुका है। देश के सभी राजाओं के पास युद्ध में सम्मिलित होने के निमन्त्रण भेज दिये गये। आज सम्पूर्ण देश दो हिस्सों में बंटता चला जा रहा है। यह आग अब शान्त होने वाली नहीं है।"

"आप ठीक कहती हैं देवी कृपी, अब मैं क्या करूं ? अश्वत्थामा को दुर्योधन ने अपने पक्ष में ले लिया है। वह जानता है कि बेटे को साथ में बनाये रखो, पिता श्री को विवश होकर उन्हीं के साथ रहना पड़ेगा।"

"स्वामी उनके साथ न रहने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। हमारे लिये तो सब शिष्य बराबर हैं। अब इस कुचक्र से निकल पाने का कोई रास्ता भी तो दिखाई नहीं दे रहा है।"

"देवी कृपी, रास्ता तो है किन्तु .....।"

"स्वामी ऐसा कौनसा पथ है जिससे हम इस कीचड़ से बच सकें।"

"देवी, एक ही पथ शेष है ओर वह है-एकलव्य का।"

"स्वामी उसका क्या अस्तित्व ?"

"देवी, ऐसा न कहें, वह देश में आज तीसरी शक्ति के रूप में उभर चुका है। मेरी दृष्टि में उसके पास भी किसी न किसी के द्वारा जरूर बुलावा गया होगा। देखना देवी कृपी, वह जिसके साथ होगा विजय श्री उसी का वरण करेगी।"

'स्वामी वह किसके साथ जा सकता है ?'

"देवी, उसके मन में वही एक श्रेष्ठता का कांटा खटक रहा होगा।"

"आपके कहने का आशय है-आपकी बात को लेकर अर्जुन से वैमनष्यता, यह तो गुरूद्रोह है।"

"कैसा गुरूद्रोह ? उसे सब कुछ ज्ञात हो गया होगा कि अर्जुन ने विराट के युद्ध में गुरूदेव को पराजित कर दिया। इसीलिये वह दुर्योधन के साथ आ सकता हैं।"

"आप उसके पास युद्ध का बुलावा क्यों नहीं भेज देते ?'

"देवी, मैं नहीं चाहता, वह किसी का भी साथ दे। मेरे मन में तो यह बात आती है कि मेरा बेटा समझदार हो चुका है इसलिए अश्वत्थामा जहां रहना चाहे रहे, मैं इन दिनों एकलव्य के यहां चला जाता हूं।"

"स्वामी ऐसा न करना। यदि वह युद्ध में सम्मिलित नहीं हो रहा है और आपके उसके यहां पहुंच जाने के पश्चात् भी आप युद्ध से नहीं बच पा रहे है। उसे आपके साथ रहना पड़ेगा। यदि उसे कुछ हो गया तो दोषी आप ही माने जायेंगे। लोग कहेंगे द्रोणाचार्य ने एकलव्य की हत्या कर दी।''

"ऐसा न कहें देवी, मुझे ज्ञात हो गया हैं कि वह आज भी सर्वश्रेष्ठ धनुर्धरों एवं गदाधरों में से एक है। सुना है उसकी पत्नी भी महान धनुर्धर है,उसका प्रण था कि वह विश्व के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर से ब्याह करेगी । मेरे अंगुष्ठ दक्षिणा में लेने के पश्चात ही तुरन्त उसने एकलव्य से विवाह कर लिया, अर्थात उसने एकलव्य को सवैश्रेष्ठ धनुर्धर मान लिया।एक लबय ने भी इन दिनों अपने हाथ में से अंगुष्ठ के बिना ही उसी गतिसे धनुष संधान करना सीख लिया है ।"

"अरे ! इतना योग्य ओर शक्तिशाली है वह, तब तो हमें वहीं .....।"

"नहीं देवी, जो हो हम अश्वत्थामा को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। मैं तो युगों युगों से शिष्य मोह में, अब पुत्र मोह में बँधा हुआ जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। सम्भव है इसी मोह में ही मेरी मृत्यु भी हो जाये।"

"स्वामी, ऐसा अशुभ बोलने में आपको संकोच नहीं लगता।"

“देवी, मुझे जो आभास हो रहा है मैने वही कहा है।”

यह सुनकर कृपी इस दुखद प्रसंग को सामने से हटाने के लिये स्वयं हट गई।

12

एक दिन हंसी हंसी में महारानी ने निषादराज हिरण्यधनु से कहा, “स्वामी कुछ दिनों से आपकी दाढ़ी में भी श्वेत बाल दृष्टि गोचर होने लगे है।”

महारानी की यह बात सुनकर वे सोचने लगे, “अयोध्या के राजा दशरथ ने तो दर्पण में श्वेत बालों को देखकर राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय कर लिया था। कहीं महारानी सलिला इसी बात का संकेत तो नहीं दे रहीं हैं।’

यह सोचकर बोले, “हम समझ गये महारानी का संकेत किस ओर है?”

“मैं समझी नहीं किस ओर संकेत ?”

“यही महारानी, हमें एकलव्य का राज्याभिषेक कर देना चाहिये।”

’स्वामी मेरा संकेत इस ओर नहीं हैं।”

“इसका अर्थ है देवी, आप अपने दायित्व से च्युत हो रही हैं।”

“कैसे ?”

“ आयु के अनुसार उत्तरदायित्व का बोध न करा कर।”

‘आप कहां का अर्थ कहां लगा लेते हैं ? मैने तो श्वेत बालों का संकेत विनोद में किया है।’

“महारानी आपको याद होगा अयोध्या के महाराजा दशरथ ने दर्पण में अपने श्वेत बालों को देखकर राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया था, हमारा भी यही दायित्व है।

महारानी सोचने लगीं, “निषादराज परम्परा से राम भक्त हैं। यदि वे ही इस परम्परा का पालन नहीं करेंगे तब कौन करेगा ?”

महारानी को सोचते हुये देखकर भावों को समझते हुये बोले, ‘‘हम चाहते हैं अपने पुरम के

वरिश्ठजनों से इस विशय पर परामर्श कर देखें कि वे हमें क्या पथ सुझाते हैं।’’

महारानी ने उत्तर दिया, ‘‘स्वामी जैसा उचित समझें।’’

दूसरे दिन राजप्रासाद के विशाल कक्ष में सभा आरम्भ हुई।

निषादराज हिरण्यधनु ने सभा के समक्षअपना मन्तव्य प्रकट किया, ‘‘बन्धुओं, आज हमारे समक्ष हमारेश्श्वेत हो रहे बालों का प्रसंग आकर खड़ा हो गया है। हम राम भक्ति परम्परा के हैं। महाराज दशरथ ने अपने श्वेत बाल देखकर श्रीराम का राज्याभिशेक करने का निर्णय लिया था। श्रीराम पितृ भक्त के रूप में हमारे सामने हैं। हमारे युवराज एकलव्य का भी श्री राम जैसा ही आचरण है। उसने गुरूभक्त के रूप में समाज के समक्ष अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस समय राज्यारोहण के सम्बन्ध में हम आपके विचारों से अवगत होना चाहते हैं।’’

श्रीराम के राज्याभिशेक के प्रश्न पर सभा में उपस्थित जनों में रामकथा की चर्चा चल पड़ी। कुछ निषादगण अपने पूर्वज निषादगुह के प्रसंग को सुनने के इच्छुक थे , पर वे सब धीमे धीमे बतिया रहे थे बोल न पा रहे थे।

साहस करके निषादराज को प्रणाम कर लोहकर्मी रामबली बोला, ‘‘हम कुछ निर्णय लें इसके पूर्व अपने पूर्वज रामभक्त की कथा अपने वरिश्ठ निषादमुनी जी से सुनना चाहते हैं।’’

एक बोला, ‘‘मुनीजी से क्यों मनोहर काका से क्यों नहीं ?’’

दूसरा बोला, ''भैया मुनीजी निषाद गुह की कथा कहने में सम्पूर्ण निषादपुरम में प्रसिद्ध हैं। उनकी कथा इस पुरम में यत्र तत्र होती रहती है।आज राज सभा में ही सुन लें हम ।''

लोहकर्मी रामबली ने अपने विचार से सभा को अवगत कराया, ''बन्धुओं, मुनीजी से हम सब निषादगुह की कथा सुनने के इच्छुक हैं।''

यह सुनकर निषादराज हिरण्यधनु बोले, ''निषाद मुनी हमारे पास बिछे आसन पर आकर विराजमान हों और कथा सुनावें।''

उनका आदेश सुनकर निषाद मुनी फूले न समायें। वे सोचने लगे, ''निषादराज के समक्ष उनकी यह पहली कथा है।''

वे संकोच करते हुये उठे। निषादराज के पास बिछे आसन पर जाकर बैठ गये और कथा कहना प्रारम्भ की, ''बन्धुओं, मुझे अपने रामभक्त पूर्वज निषादगुह का प्रसंग याद आ रहा है-निषादगुह वीर पुरूश थे। उनकी वीरता की धाक चारों और फेल रही थी। उन्हीं दिनों उन्हें ज्ञात हुआ कि श्रीराम, सीता और लक्ष्मण वन में आ रहे हैं। यह जानकर वे अत्यधिक आनन्दित हो गये। उन्होंने अपने बन्धुओं को बुलाकर कहा, ''श्रीराम सीता और लक्ष्मण हमारे इस घनघोर जंगल में पधार रहे हैं। उनके लिये फल फूल और कन्द लेकर उनसे भेंट करने चलें। आज हमारे हृदय में हर्श का पारावार नहीं हैं ।

श्रीराम के समक्ष पहुंचने पर निषादगृह ने दण्डवत करके, उनके सामने भेंट की वस्तुयें रख दी और प्रेम से उनकी ओर निहारने लगे।

श्रीराम ने उन्हें प्रेम के वश में जानकर पूछा, ''मित्र निषाद कुशल से तो हो।''

निषादगुह ने उत्तर दिया, ''हे नाथ आपके दर्शन पाकर सकुशल हो गया हूं। आज तक मैं नीच जाति में गिना जाता था। लोग मुझे देखकर, मेरी छाया से दूर रहते थे। आज आपके दर्शन पाकर भाग्यवान पुरूशों की श्रेणी में आ गया हूं। प्रभू इसी तरह विश्व के सम्पूर्ण अछूत, आपके निकट आकर श्रेष्ठपुरूशों की श्रेणी में क्यों नहीं आ जाते। आपके दर्शन करने के बाद अब कोई हमारा शिक्षा से बहिश्कार नहीं करेगा। अर्थ उपार्जन से हमें कठिनाई नहीं होगी। अब हम सब धन्य हो गये हैं।''

फिर दोनों मित्रों में राजनीति, अध्यात्म्य और घरेलू चर्चाऐं होती रहीं ।

दसरथ नंदन राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ कई दिन वहां रूके।

.....बन्धुओं, वनवास की मर्यादा के अनुसार श्रीराम जी के वृक्ष के नीचे ठहरने का प्रबन्ध हमारे निषादगुह करने लगे। उनके लिये कोमल पत्तों का सुन्दर बिछोना बिछाया। अपने हाथ से कन्दमूल और फल लेकर आए। वे स्वयं जल का पात्र भर कर रखा। जब उनके सोने का समय हुआ तो वे तरकस बाँधकर बाण चढ़ाकर वीरासन में बैठे श्री लक्ष्मण जी के पास जाकर बैठ गए।

बन्धुओं, श्रीराम और सीता को धरती पर सोते हुये देखकर उनके हृदय में विशाद उत्पन्न हो गया। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु बहने लगे और वे श्री लक्ष्मण जी से अपने मन की व्यथा कहने लगे, ''भैया हमसे यह सब देखा नहीं जा रहा है। क्या ये धरती पर सोने योग्य है। कैकयी ने यह अच्छा नहीं किया। राजा ही अपने घर में जब यह व्यवहार करने लगे तब वह अपनी प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करेगा ? वह तो अपने राजपरिवार की उलझनों में उलझ कर रह जायेगा।''

निषादगुह के मुंह से अपने परिवार संबंधी परिचर्चा सुन कर और मर्म पर चोट पहुंचाने वालाश्प्रश्न सुनकर उस को टालने के लिये, लक्ष्मण ज्ञान की भाशा में बोले, ''हे मित्र कोई किसी को सुख दुःख पहुंचाने वाला नहीं है। सब अपने ही किये हुये कर्मो का फल भोग रहे हैं। संयोग वियोग सब जगत के जंजाल हैं । मन वचन ओर कर्म से श्रीराम के चरणों में प्रेम होना ही परमार्थ है।''

निषादगुह को लगा, ''ये तो हमें वैराग्य का निराशावादी उपदेश दे रहे हैं। ये भी क्या करें। इस तरह घर से निश्काशित होने के पश्चात् आदमी के हाथ, निराशा ही लगेगी। हमारे जैसा श्रमजीवी इस तरह नहीं सोचता। किन्तु श्री लक्ष्मण जी की मुद्रा से निराशा नहीं आत्मविश्वास झलक रहा है।

.....बन्धुओं, यों सोचते हुये उन्होंने अपनी पहली रात्रि उनके साथ व्यतीत की। फिर सुबह हुई और राम ने अपने काका तुल्य मंत्री सुमंत्र को वापस अयोध्या भेजा ।

मंत्री के चले जाने के बाद श्रीराम ने गंगा पार करने के उद्देश्य से गंगा तट पर आकर वहां नाव लेकर खड़े केवट से कहा, ''केवट भैया हमें गंगा पार करा दो।''

केवट सीधा सच्चा भोला भाला मनुश्य था। वह श्रीराम के मर्म को जानता था कि इनकी चरण रज से पत्थर सी बनी अहिल्या सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके अपने पति के घर चली गई। कहीं इनकी चरण रज से मेरी नाव भी सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर गई तो मेरे परिवार का पालन-पोशण कैसे होगा ? अभी तो एक ही पत्नी हे फिर दो स्त्रीयों का कैसे ेभरण पोषण कर पाऊगां !''

यह सोचकर उसने कहा, ''प्रभू मैं आपको नाव में चढ़ाने से पूर्व आपके चरण प्रक्षालन करना

चाहता हूँ। मै महाराज दसरथ की सौगंध खाकर कहता हूँ कि अगर आप पांव धुलवाने तैयार हों तो ही मैं आपको गंगा पार ले जाऊँगा।''

लक्ष्मण को एक केवट की ऐसी बातें ज्यादा बड़बोले पन की बातें लगीं, वे तनिक क्रोधित हुए लेकिन श्रीराम उसकी भोली-भाली बातों को सुनकर मुस्कराते हुये बोले- ''केवट भैया, हमें पार जाना ही है इसलिये आपके मन को जैसा भावे, वैसा करें।''

श्रीराम की बात सुनकर वह उनके चरण प्रक्षालन के लिये कठोता में जल ले आया। उसने अश्रुपूरित नेत्रों से उनके चरण प्रक्षालन किये। अपने पूरे परिवार एवं बन्धु बान्धवों के सहित चरणामृत लिया। तब श्रीराम को नाव में बैठाया और उस पार छोड़ आया ।

निषादराज श्रीराम के साथ ही गंगा पार गये ओर उन्हे चित्रकूट के गहन वनप्रांतर में विचरण कराया ओर उस मोहम वन में कामदगिरि पर कुटिया बनवा कर उसमें निवास करना आरंभ कराके लौटे ।

बन्धुओं, कुछ दिनों बाद जब भरतजी के श्रड्.गवेरपुर आने का समाचार निषादगुह ने सुना तो वे दुःखी होकर विचार करने लगे, ''ये भरत वन में क्यों आ रहे हैं। इनकी चतुरंगनी सेना इनके साथ है। कहीं ये राम को मारकर निश्कंटक राज्य तो नहीं करना चहते।''

यही सोचकर निषादगुह ने अपने बन्धु बान्धवों को बुलाया और उन्हें सावधान किया ''सभी नावों को अपने कब्जे में ले लें या फिर उन्हें गंगा के जल में डुबा दें। सब घाटों के रास्ते बन्द कर दें। भरत से युद्ध करने तैयार रहें। मैं भरत से युद्ध के मैदान में लोहा लूंगा। जीते जी उन्हें गंगा पार नहीं करने दूंगा।''

उनका यह आदेश पाकर निषादवीर युद्ध की तैयारी करने लगे।

बन्धुओं, हमारी जाति के लोग कायर नहीं हैं। वे युद्ध कुशल धनुश बाण, गदा, खड्ग इत्यादि चलाने में निपुण हैं। इसके साथ-साथ जिस कार्य को करते हैं बड़ी ही निपुणता से करते हैं। उस दिन युद्ध के नगाड़े बजने ही वाले थे कि बायीं और छींक हुई। हमारी जाति में बड़े-बड़े

शगुनी भी हैं। वे छींक के सम्बन्ध में विचार करने लगे। एक शगुनी अपने दायें हाथ की अंगुलियों के सहारे अपने दोनों नथनों के स्वरों से अनुमान लगाते हुये बोला- ''हमारी जीत सुनिश्चित है ?''

एक बूढ़े शगुनी ने विचार कर कहा, ''भरत से मिल लीजिये। उनसे युद्ध नहीं होगा। उनसे मिलकर उनके स्वभाव को पहचानने का प्रयास करें। बैर प्रीति छिपाये नहीं छिपती।''

दूसरा शगुनी अपना बुद्धिमत्ता पूर्ण विचार रखते हुये बोला, ''देखिये, उनकी भेंट के लिये तीन तरह की साम्रगी सजायी जावे। एक, पुरानी व नयी मछलियाँ। दूसरी, पक्षी और हिरण। तीसरी, कन्द मूल और फल।

किसी ने प्रश्न कर दिया, ''इनसे उनके स्वभाव की पहचान कैसे होगी ?

यह प्रश्न सुनकर उसने उत्तर दिया, ''मछलियों की भेंट ग्रहण करने से उनकी तमोगुणी वृति का पता चलेगा। बैर भाव रखने की प्रकृति का इससे बोध होगा। पक्षी और हिरण रजोगुण के प्रतीक हैं, यदि उनने यह भेंट स्वीकारी तो इससे उनके मन की दूसरे से छीनने की वृति का पता चलेगा। कन्द मूल और फल सतोगुण प्रधान है यदि वे इन्हें स्वीकारते हैं तो ऐसे साधु संत के चरण पकड़ लेना चाहिये।

विविध प्रकार की भेंट सामग्री लेकर वे भरत जी से मिलने निकल पड़े। निषादगुह भरत को

देखकर दूर से ही अपना नाम उच्.चार ते हुए जुहार करके आगे बढ़े। भरतजी को पता लग गया था कि निषादगुह श्रीराम का मित्र है। श्रीराम ने उसे गले लगाया है ।यह सोचकर उनने राम के प्रेम में डूबते हुए आगे बढ़कर उसे गले लगा लिया। उनने भेंट सामग्री की ओर देखा भी नहीं।

जब निषादगुह उने गुरूदेव वशिश्ठ जी को प्रणाम किया तो उन्होंने उसे दूर रहकर से ही हाथ उठाकर आशीर्वाद दे दिया।निषादराज ने समस्त माताओं को प्रणाम किया और अपने नगर में लाकर उनने सब पाहुनों ंका यथा रूचि सत्कार किया ।

अब सभी राम से मिलने आगे बढ़े। पथ प्रदर्शन का कार्य निषादगुह करने लगा।

जब चित्रकूट पहुंचे श्रीराम और लक्ष्मण जिस प्रकार भरत और शत्रुघ्न से मिले ठीक वैसे ही वे निषादगुह से अंक भेंट कर मिले। जब वशिश्ठ जी ने देखा कि राम तो जांति पांति छूत-अछूत ओर सवर्ण-अवर्ण का भेद भुलाकर अपने भाई की तरह निषादराज गुह से गले लग कर मिल रहे हैं तो उन्हे अपनी गलती महसूस हुई और अचारक ही उन्होंने पीछे पलट कर निषादगुह को अंक में खींचकर आशीर्वाद दिया।

अयोध्या की दिशा से श्रृंगवेरपुर से आने वाले लोग वनवासी राम और लक्ष्मण से मिल रहे थे, लेकिन एक अचंभा सब देख रहे थे कि अयोध्या की दिशा से संग संग आये गुरू वशिष्ठ और निषादराज गुह जो बहुत देर पहले आपस में मिल चुके हैं यहां परस्पर बड़े स्नेह से फिर फिर गले मिल रहे हैं ।

लोग सझ नही पा रहे थे कि, ‘‘गुरूदेव वशिश्ठ जी निषादगुह के साथ साथ श्रड्.गवेरपुर से आये हैं उन्हे मिलना था तो राम से मिलते लक्ष्मण से मिलते, अचानक अब ऐसा क्या हो गया जो यहाँ आकर अपने सहयात्री निषादराज गुह से इस तरह भेंट कर रहे हैं।’’

केवल निषादगुह समझ पाया, ‘‘गुरूदेव ने श्रृंगवेरपुर में पहले मुझे दूर से ही आशीर्वाद दिया था। यहाँ चित्रकूट में उन्होंने श्रीराम को मुझे गले लगाकर भेंट करते हुये देख लिया,तो जाना कि मैं श्रीराम का मित्र हूं ओर उनने मुझे छू लिया अर्थात मैं संसार मे ंसबसे ज्यादा पवित्र हो चुका हूं। इसीलिये गुरूदेव भी मुझे अब गले लगाकर आशीर्वाद दे रहे हैं।’’

इन भावों में आत्मविभोर होते हुये निषादराज हिरण्यधनु बोले, ‘‘श्रीराम की हमारे वंश पर असीम कृपा रही है। हमारी भील जाति में श्बरी नाम की महान तपस्वनी हो गई है। वे मतंग ऋषिकी शिश्या थीं। जब श्रीराम जी वन में आगे बढ़े तो उनकी मुलाकात शबरी से हुई। शबरी ने चख-चख कर रखे मीठे मीठे बेर श्रीराम को खिलाये। यों भेदभाव की खाई को श्रीराम ने पूरी तरह पाट दिया। आज हमारी समझ में यह नहीं आता कि लोग श्रीराम के आचरण से कुछ भी नहीं सीख पाये। ऐसे भेदभाव को नश्ट करने वाले श्रीराम हमारे इश्ट हैं।’’

महारानी सलिला गर्व से खड़े होते हुये बोली- ‘‘बन्धुओं, हमारे निषादराज ने श्रीराम के राज्याभिशेक की परम्परा के कारण ही युवराज एकलव्य का राज्याभिशेक करने का निर्णय लिया है।’’

निषादराज ने अपना अन्तिम निर्णय सुनाया, हम वृद्ध हो चले हैं, इसका अनुमान इसी बात से लग जाता है कि हमारा पौत्र पारस इस समय पाँच वर्श का हैं हम कौरव और पाण्डवों में से नहीं हैं। धृतराश्ट्र अन्धे होकर भी सत्ता से चिपके हुये हैं। इसी का परिणाम है चेतना लुप्त होती जा रही है।’’

अब वृद्ध मनोहर निर्णय देने के लिये खड़े हुए ओर बोला, ‘‘हम सभी निषाद राम भक्त हैं। श्रीराम के जीवन से इस प्रसंग का जुड़ना मात्र संयोग नहीं है। इसे हम श्रीराम का आदेश मान कर चलें।’’

इस निर्णय के बाद एकलव्य के राज्याभिषेक की तैयारी शुरू हो गई।

अन्ततः वह दिन भी आ पहुंचा ।

प्रातः से ही महारानी बारम्बार इसी कलपना में डूब जाती हैं, “मेरे वत्स एकलव्य का राज्याभिषेक हो रहा हैं। पुत्रवधू वेणु राज्य की महारानी बन जावेगी। महारानी की गद्दी पर बैठकर कितनी सुन्दर लगेगी पुत्रवधू ?”

इसी समय प्रहरी ने अवगत कराया, “महारानी राजसभा में सभी परिजन उपस्थित हो गये हैं। देश के दूर दूर के भील राजा भी आ चुके। आपको सभा में शीघ्र पहुंचना चाहिये।

महारानी सलिला राजसभा में पहुंचने के लिये चल दीं।

जब वे वहां पहुंची, रघुवंश की परम्परा के अनुसार एकलव्य को तीर्थों के जल से स्नान कराया गया। निषादमुनि के निर्देशन में अभिशेक की परम्पराओं का पालन किया जा रहा था। परम्पराओं के पालन में सम्पूर्ण दिवस व्यतीत हो गया। सांझ समय एकलव्य को सिंहासन पर बैठाया गया और वेणु को महारानी के पद पर। निषादराज ने स्वयं अपना मुकुट एकलव्य को पहनाया। महारानी सलिला ने एकलव्य और वेणु के तिलक कर आशीर्वाद दिया, ''युगों युगों से चली आ रही निषाद वंश की परम्पराओं के अनुसार प्रजाजनों का पालन करते रहें।''

इस प्रकार युवराज एकलव्य निषादराज बन गये और वेणु महारानी।

कुछ दिन पश्चात श्री हिरण्यधनु एकलव्य का राज्याभिषेक करने के कुछ दिनों पश्चात् पत्नी के साथ एकान्तवास करने वन चले गये।

00000

युद्ध और शान्ति। युद्ध में विनाश है शान्ति में सृजन। युद्ध में वीभत्सता के दर्शन होते हैं, शान्ति में लोक कल्याण की भावना का विस्तार होता है। कभी-कभी शान्ति के लिये भी युद्ध अनिवार्य हो जाता है । एककलव्य उस दिन यही सोच रहे थै ।

उधर कौरव और पाण्डवों के सम्बन्ध में गुप्तचर पुष्पक सूचना भेज रहा था।

कौरव और पाण्डव की ओर से सन्देश वाहकों के द्वारा युद्ध में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण आ चुके थे। सन्देश वाहकों के हाथ आये आमंत्रण की उदासीन और औपचारिक सी भाषा से एकलव्य समझ गया कि हमें दोनों पक्ष महत्वपूर्ण नहीं मान रहे हैं।

एकलव्य ने दोनों ओर के सन्देश वाहकों से कह दिया, "हम शान्ति चाहते हैं। नीति और न्याय का पक्ष लेना चाहतें हैं लेकिन हमें दोनों ओर इस नीति और न्याय का अभाव ही लग रहा है । हालांकि सम्पूर्ण भारत वर्ष धर्मराज युधिष्ठिर को न्याय प्रिय मान रहा है, लेकिन मेरा मन आज तक उनकी न्यायप्रियता को स्वीकार नहीं कर पाया है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कुछ सद्पात्रों के चरित्र, जन जीवन को उदात्त बनाने का कार्य करते रहते हैं। रही विकारों की बात, वह तो मानव जाति के धरोहर के रूप में प्राप्त हुये हैं। निर्विकार होना तो मानव जीवन का लक्ष्य है। कौन कितना निर्विकार हो पाता है यह उसके अभ्यास पर निर्भर करता है। देश के सभी राजा, महाराजा युद्ध में भाग ले रहे हों अथवा नहीं, उनका ध्यान इस युद्ध की ओर केन्द्रित रहेगा ही, लेकिन हम किसी की तरफ से इस युद्ध में सम्मिलित नहीं होगे।''

एक दिन वेणु और एकलव्य में पुश्पक की चतुराई को लेकर बातें चलीं। एकलव्य ने कहा,

''महारानी हमें अपने गुप्तचर पुष्पक पर गर्व है।''

"हाँ निषादराज, वह हमें महाभारत युद्ध की समस्त सूचनायें यहां यथासमय भेजता रहता है।"

"महारानी हमारा गुप्तचर इन दिनों महाराजा धृतराष्ट्र के परम प्रिय सेवक संजय के यहां जाकर उनका विश्वास पात्र बन गया हैं।"

"अरे ! आश्चर्य की बात है। वह तो बिलकुल उस जगह बैठ गया है जहां से संपूण◌ार्◌ा युद्ध का विवरण सुनाई देगा ◌ं निषादराज हमने सुना है कि व्यास जी की कृपा से संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई है। अब उससे कोई भी बात छिपा कर रखना सम्भव नहीं है।

"महारानी वे पुष्पक के सम्बन्ध में सब कुछ जानते हैं कि वह हमारा गुप्तचर है और हमसे

हस्तिनापुर को कोई अंदेशा भी नहीं है। हम शान्ति चाहते हैं।"

"निषादराज, संजय जी सब कुछ जानतें हैं फिर भी पुष्पक को अपने साथ रहने दे रहे हैं ? यह बात मैं कुछ समझी नहीं।"

“महारानी, पुष्पक ने संजय जी से कोई बात छिपाई नहीं है इसीलिये संजय जी उनसे खुश हो गये हैं और उसे अपने पास रहने दे रहे हैं।”

निषादराज की सेवा में पुष्पक ने क्या समाचार भेजे हैं। हमें अवगत नहीं करायेंगे।”

“अवगत क्यों नहीं करायेगे ? सुना है इस बीच श्री कृष्ण शान्ति का सन्देश लेकर हस्तिनापुर आ चुके हैं। उन्होंने पाण्डवों के लिये केवल पांच गाँव माँगे थे किन्तु कौरवों ने उन्हें सुई की नोंक के बराबर भूमि देने से इन्कार कर दिया।’

“सुई की नोक बराबर ! वाह क्या उपमा कही , वैसे देव यह अन्याय है।”

“हां महारानी, यह कौरवों का अन्याय है , सुई की नोक की उपमा मेरे गुरूदेव द्रोणाचार्य्र ने ही मुहाविरे के रूप में बनाई है । अब तो दोनों सेनायें आमने सामने कुरूक्षेत्र के मैदान में आकर खड़ी हो गई हैं। भाई भाई शत्रु के रूप में एक दूसरे के सामने खड़े हैं। युद्धभूमि में अर्जुन के सामने, अपने सभी परिजनों अर्थात काका, काका के बेटे , अपने पितामह, कुलगुरू, और उन सबके साथ गुरूदेव द्रोणाचार्य दिख गये तो सुना है उसने क्या कहा।‘‘

“क्या कहा है निषादराज?”

“यही कि हे जनार्दन भूभाग और क्षणभंगुर राज्य के लिए मैं अपने परिजनों,गुरूवर और आदरणीय लोगांे तथा रक्तसंबंधियों-नाते दारों युद्ध नहीं चाहता हूं। उसने अपना गाण्डीव भी श्रीकृष्ण के चरणों में रख दिया है।”

“यह तो विचित्र स्थिति उपस्थित हो गई हैं।

“श्रीकृष्ण उसे समझाने का प्रयास कर रहे हैं। वे उन्हें क्या समझा रहे हैं यह बात तो गुप्तचर पुष्पक प्रस्तुत नहीं कर सका है। उसने इतना संकेत तो दिया है कि श्रीकृष्ण उसे दर्शन का पाठ पढ़ा रहे हैं कि अर्जुन तू न किसी को मार सकता न तेरे मारे से कोइ्र मरेगा, ये सब तो मेरे मारे से मर रहे हें, तू न भी मारेगा तो ये सब मर जायेंगे । मरना जीना किसी के हाथ नहीं । मरने से किसी व्यक्ति का संसार समाप्त नही हो जाता, बस देह बदल कर आत्मा नयी देह में आ जाती है। तू संभवतः मेरे मुंह से कुछ गंभीर उपदेश सुनना चाहता है । फिर श्रीकृष्ण ने गंभीर बातें कहीं ं”

“वह किस लिये ?”

“जिससे अर्जुन युद्ध कर सके।’

“हाँ महारानी दर्शन और युद्ध। मुझे तो लगता था कि गुरूदेव द्रोण केवल अस्त्र शस्त्रों के आचार्य रहे हैं उनके पास दर्शन का अभाव रहा है वहीं दरिद्रता उनके चेलों में हैं।”

“मैं फिर भी नहीं समझी, निषादराज। युद्धभूमि में दर्शन का महत्व प्रतिपादित करने का

कौनसा औचित्य है?”

“महारानी श्री कृष्ण ने सान्दीपनी आश्रम में सब विधाओं के साथ दर्शन का पाठ भी पढ़ा हैं। अर्जुन ने दर्शन के दर्शन भी नहीं किये, सो श्री कृष्ण की हर बात अर्जुन को नयी और अनूठी लगी। इसीलिये तो मैं हर बार सोचता रहा हूँ, गुरूदेव द्रोण अधूरे आचार्य रहे हैं। उस अधूरेपन की पूर्ति आज श्रीकृष्ण युद्धभूमि में स्वयं कर रहे हैं।’

“निषादराज, आप बात को और अधिक रहस्यात्मक बना रहे हैं।”

“नहीं महारानी मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो गुप्तचर पुष्पक के संदेश के माध्यम से ही सम्पूर्ण बातें बतला रहा हूँ।

‘‘युद्धभूमि में दर्शन ? हमें कुछ समझाने का प्रयास करें।”

“महारानी, अर्जुन ने सामने जब अपने परिजनों को देखा तो सोचने लगा कि युद्ध के अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं। हाथ से गाण्डीव छूटा जा रहा है। हे कृष्ण! न तो मैं विजय

चाहता हूँ और न ही राजसुख। हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन ? ऐसे भोगी जीवन से क्या लाभ ? इन सब को मारकर हम कैसे सुखी रहेंगे ?"

महारानी वेणु के मुख से शब्द निकले, "निषादराज, इस समय अर्जुन व्यर्थ ही ऐसी बातें कह रहा है। आप अन्यथा न लें, ऐसा वैराग्य अर्जुन को उस दिन नही हुआ जिस दिन किसी निरपराध शिष्य का अंगुष्ठ कटवा लिया। चलो चेतना तो आई, देर से ही सही इस घटना ने अर्जुन की आंखें तो खोल दी।"

''महारानी, गुरूदेव ने यदि अस्त्र शस्त्र के साथ जीवन जीने की कला सिखायी होती तो निश्चय ही यह युद्ध नहीं होता। गुरूदेव सान्दीपनी ने अपने शिष्यों को जीवन दर्शन का पाठ भी पढ़ाया है, उसी का परिणाम है कि आज युद्धभूमि में श्रीकृष्ण अर्जुन को दर्शन का उपदेश दे रहे हैं।

''क्यों लगे हैं वे उन्हें दर्शन का पाठ पढ़ाने। बेचारा अर्जुन युद्ध टाल रहा है। कभी मानव सभ्यता की पहिचान मिटेगी तो इन युद्धों से। श्रीकृष्ण हैं कि युद्धों को अनिवार्य बना देना चाहते हैं।

''आप ठीक सोचती हैं इससे आने वाले समय में युद्धों की अनिवार्यता सिद्ध हो जायेगी।''

''निषादराज यह पाठ इनको युद्धभूमि से पहले पढ़ाया जाता तो इसका भिन्न अर्थ होता किन्तु युद्ध के मैदान में उनका यह सन्देश हमें रूचिकर नहीं लग रहा है।''

''महारानी, अर्जुन युद्ध न करने की बात को, जाने कैसे-कैसे तर्को द्वारा निरर्थक सिद्ध करना, युद्ध मानव संस्कृति के हित में तो नहीं लगता।''

''स्वामी, युद्ध न हों समस्या के समाधान बातचीत के माध्यम से निकाले जाये, आदमी को इस बात पर गहराई से विचार करना पड़ेगा। दर्शन में ऐसा क्या है जो.....।''

''दर्शन असाधारण चिन्तन है। जैसे हम कर्म करें किन्तु फल की इच्छा न करें। ऐसे उपदेश श्रीकृष्ण अर्जुन को सुना रहे हैं।''

''स्वामी, अर्जुन मूर्ख नहीं है, वह ऐसे विचारों को मानने वाला नहीं है। अरे ! बिना फल की इच्छा के कोई कर्म क्यों करना चाहेगा ?''

''अरे ! मुझे भी यही लगता है श्री कृष्ण अर्जुन को ऐसा अव्यवहारिक शास्त्र क्यों समझाने लगेहैं।'' इससे तो अर्जुन युद्ध के प्रति और निश्क्रिय हो जावेगा।''

''देव कोई श्रमिक श्रम करे और उसका प्रतिफल न चाहे तो वह भूखा मर जावेगा। समझ नहीं आता श्रीकृष्ण जैसा कर्मयोगी ये क्या उपदेश दे रहा है। कहीं उनके उपदेश से मानव सभ्यता भ्रमित हो गई, तब क्या होगा ?''

''होगा क्या ? आदमी निराशा के गर्त में डूब जायेगा। इन सभी बातों से निवृत होने के लिये, हमें अपनी शिक्षा प्रणाली पर ध्यान देना होगा। हमें ऐसी शिक्षा पद्धति चाहिये जो हमारी जातिवादी व्यवस्था का उचित समाधान दे सके। ये ऊँच नीच की खाई, राजा प्रजा के भेदभव समाप्त हो जाये। आदमी लोकनिन्दा के भय से पुनः अपने आपको नियन्त्रित कर सके।

इसी समय मन्त्री चक्रधर ने कक्ष में प्रवेश करते हुये कहा, 'निषादराज की जय हो।

यह सुनकर एकलव्य ने प्रश्न किया, "कहो मन्त्रीवर, कुरूक्षेत्र के क्या समाचार हैं ?"

"देव, कुरूक्षेत्र का युद्ध विकराल रूप धारण करता जा रहा है।"

"इसका अर्थ है अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया है।"

"हां निषादराज, श्री कृष्ण के तर्कों के समक्ष अर्जुन ने घुटने टेक दिये हैं। अब दिन प्रतिदिन युद्ध विकराल होता जा रहा है। पहले ही दिन पाण्डवों के सेनापति श्वेत घमासान युद्ध करते हुये भीष्म पितामाह के द्वारा मारे गये। दुर्योधन, कौरव वीरों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करने में लगा रहता है।भीमसेन ने कलिंगराज भानुमान और उसके हाथी का वध कर दिया हैं।"

एकलव्य ने आश्चर्य व्यक्त किया, “अरे ! ”

’हां निषादराज श्री कृष्ण ने युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु भीष्म पितामाह उनकी प्रतिज्ञा तोड़ने में सफल रहे। भीष्मपितामह के युद्ध की विकरालता और पाण्डवों की सेना की कातरता देखकर श्री कृष्ण उन पर सुदर्शन चक्र लेकर मारने के लिये दौड़ पड़े।’

यह देखकर भीष्म जी उनसे कहने लगे, “बस बस श्री कृष्ण ! मुझे तो तुम्हारी प्रतिज्ञा तोड़ना थी।

यह सुनकर कृष्ण को चुप रह जाना पड़ा।”

महारानी वेणु बोलीं, “यह युद्ध क्या एक खेल हो गया है।”

अब मन्त्री चक्रधर पुनः बोले, “महारानी जी, युद्ध में भीष्म पितामाह ने सेना का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। अश्वत्थामा और शिखण्डी का भी घमासान युद्ध देखने को मिला है। इन दिनों इच्छा मृत्युवाले भीष्मपितामह दक्षिणायन सूर्य के चक्कर में बाणों की शैया पर पड़े हैं।”

वेणु ने प्रश्न कर दिया, “मन्त्रीवर, क्या वे अभी जीवित हैं ?”

मन्त्री चक्रधर ने उत्तर दिया, “हां देवी वे अभी जीवित है। लोग हैं कि उनसे परामर्श लेने के लिये उनके पास पहुंच रहे हैं। वे ज्ञान के भण्डार हें । राजनीति और दश◌ार्◌ान पर उनका समान अधिकार है, वे हर प्रश्न का सही उत्तर देते हैं । मै तो सोचता हूं हमारे निषादराज के मन में कोई प्रश्न हो तो उनके पास जाकर पूछ आना चाहिये।”

“मैं तो कहती हूँ मन्त्री जी, आप वहां निषादराज को साथ लेकर चले जाओ। वे इस समय के सबसे वयोवृद्ध एवं श्रेष्ठज्ञानी हैं। इस नाते उसने मिलने अवश्य जाना चहिये।”

यही तय हुआ ।

अगले दिन निषादराज एकलव्य और मन्त्री चक्रधर अविलम्ब अपने अपने अश्वों पर सवार होकर उनके दर्शन के लिये निकल पड़े।

निषादराज एकलव्य कई प्रश्नों की माला लिये हुये जब युद्धभूमि में पहुंचे, उस दिन का युद्ध बन्द हो चुका था। दीपक जल चुके थे । संध्या थी ओर दोनों पक्षों के लोग भीश्मपितामह के पास आते जा रहे थे। वे बाणों की शैया पर लेटे हुये हैं। बिस्मय था कि पाण्डवों के सेनापति युधिश्ठिर द्रोपदी के साथ वहां उपस्थित थे।

इस स्थिति में सकुचाते हुये एकलव्य बोला, “हिरण्यधेनु के पुत्र एकलव्य का पितामह के श्री चरणों में प्रणाम स्वीकार हो।”

यह सुनकर उनके मुख से शब्द निकले, “सदैव आनन्द में रहो। कहो निषादराज एकलव्य

कैसे हो ?”

“ठीक हूं पितामह। एक प्रश्न लिये आपके पास तक चला आया।’’

“कहिये वत्स, इस समय ही सही तुमसे मिलन तो हो सका।”

“पितामह मैने अपने पूर्वजों का इतिहास सुना है। हम निषादवंशी महाराज प्रथु के बड़े भाई की सन्तान हैं।”

“हां हैं। इसमें किसी को क्या सन्देह।”

“पितामह, फिर प्रथु के वंशज हमें छोटा क्यों मानते हैं ?”

“निषादराज, जो किसी को छोटा मानता है, छोटा वही है। किसी के मानने से न कोई छोटा हो जाता है न बड़ा।”

“पितामह, गुरूदक्षिणा में मेरा अंगूठा मांग कर मेरे साथ गुरूदेव द्रोणाचार्य ने न्याय किया है या अन्याय ?”

“वत्स एकलव्य, यदि तुम्हारा अंगुष्ठ न कटा होता तो संभवतः आज मैं इस बाणों की शैया पर न पड़ा होता। इतना बड़ा महाभारत का युद्ध जिसमें पता नहीं कितने वीर मारे जा चुके हैं और कितने और मारे जायेंगे, सब ऐसी ही भूलों का प्रायश्चित कर रहे हैं। अब ये भूलें बहुत बड़े घाव बन गये हैं।”

“पितामह, वर्तमान समय की शिक्षण व्यवस्था पर भी कुछ कहें।”

“वत्स एकलव्य यदि हम कुछ सुधार करना चाहते है तो सबसे पहले शिक्षा प्रणाली को सुधार लें। उसके पश्चात् तो सब कुछ सुधर जावेगा। यदि यहां की शिक्षा प्रणाली ठीक रही होती तो अर्जुन को युद्ध के मैदान मे मोह नहीं होता। श्रीकृष्ण द्वारा उसे शिक्षित करना पड़ा, तब कहीं उसके कदम आगे बढ पाये हैं। जो शिक्षा अर्जुन को युद्धभूमि में मिली है, वही शिक्षा यदि सभी को पहले मिल गई होती तो यह युद्ध ही नहीं होता।”

“पितामह, अब मेरे लिये क्या आज्ञा है ?”

“निषादराज, भीलजातियों के कल्याण के लिये सतत् प्रयास करते रहे।”

इसके पश्चात् निषादराज एकल्व्य और मन्त्री चक्रधर उन्हें प्रणाम करके निषादपुरम लौट आये।

13

’सामान्य जन जीवन की कहानी से जो कुछ प्रथक घटित होता है उससे सीख लेने के लिये लोग उसे याद रखना चाहते हैं। ऐसी कुछ बातें लम्बे समय तक स्मृति में बनी रहती है।’ महारानी वेणु जन जीवन में घटित होने वाली घटनाओं से सीख लेती रहती थीं।

महाभारत युद्ध के अनेक समाचार गुप्तचर पुश्पक से मिले ।

भीष्म पितामह के बाण शैयाशायी हो जाने के पश्चात आचार्य द्रोण को कौरव दल का सेनापति बनाया गया। इससे कौरवांे में जीत का उत्साह भर गया। आचार्य द्रोण ने अनेक व्यूह बनाकर पाण्डवों को मुसीबत में डाला लेकिन हर बार में सफल हुऐ, केवल अभिमन्यु के प्रसंग को छोड़कर.....पुष्पक ने अभिमन्यु का मार्मिक प्रसंग विस्तार से लिख कर भेजा था ।

आज एकलव्य ने मन ही मन गुरूदेव द्रोणाचार्य को सम्बोधित करते हुये कहा कि गुरुदेव आपके सामने अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया। उसने बड़े बड़े महारथियों के छक्के छुड़ा दिये। जब अभिमन्यु की वीरता से वे परास्त हो गये तो कर्ण जैसे छः धुरन्धर महारथियों ने मिलकर उस अकेले बालक का वध कर दिया। गुरूदेव आप जानते हैं इस कृत्य का भारत वर्ष के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ेगा। आपकी इस युद्ध प्रणाली से सीख लेकर, आने वाले समय में, युद्ध के कोई नियम ही नहीं रह जायेंगे। युद्ध का लक्ष्य मात्र विजय प्राप्त करना होगा। यदि कोई युद्ध के नियमों की बात भी करेगा तो लोग कह देगे, आचार्य द्रोण जैसों ने जब युद्ध के नियमों की चिन्ता नहीं की तब शेष मानव जाति में युद्ध के नियमों की चिन्ता करने वाला कौन होगा ?

अरे गुरुदेव ! मेरे अंगुष्ठ का दान लेकर भी आप कुछ नहीं सीख सके। आपके शाम, दाम, दण्ड और भेद के समस्त नियमों का उद्देश्य विजय प्राप्त करना ही रहा है। आज मुझे अपने अगुष्ठ के कटने का किंचित मात्र भी क्लेश नहीं है। उसके प्रायश्चित में तो मुझे लम्बे समय तक धनुर्विद्या का अभ्यास करना पडा है। गुरुदेव, अभिमन्यु वध का दृश्य मेरे सामने से नहीं हट रहा है। क्या यही वीरता रही आप सबकी ? कहां गयी आपकी उत्कृष्ट धनुर्विद्या, जिसके सामने आज सारा विश्व नतमस्तक है ? दुर्योधन को तो सत्ता चाहिये इसलिये वह तो विवश है लेकिन कर्ण पर मेरा विश्वास रहा है। इस प्रांगण में आकर तो वह विश्वास भी धराशायी हो गया। क्या सब शिष्यों ने आपसे यही शिक्षा ग्रहण की है ? आप की बड़ी कृपा रही जो आपने मुझे अपना शिष्य स्वीकार नहीं

किया,अन्यथा संभवतः मझे भी आप ऐसी ही अनीति सिखाते। मैंने आपके मन से अपने मन को जोड़कर जो अभ्यास किया है उसका प्रतिफल तो आपके परम प्रिय शिष्य अर्जुन ने आपके द्वारा मुझसे छीन लिया।

उस दिन जो समाचार मिला वह सुनकर एकलव्य बौखला ही गया, लगा सारा संसार अपनी गति भूल कर स्थिर हो गया है । अब ऐसे में उसका क्या कर्तव्य बनता है, उसके सामने प्रश्न खड़ा हो गया, वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । वह न केवल बिस्मय में डूब गया बल्कि उसका क्षत्रियों के युद्ध नियमों और आचरण

संहिता घोर अविश्वास हो उठा । उसे किंचित घृणा हो आई, इस नियमावली पर, लेकिन उतना ही क्रोध था, उसके मन में । .....अब किसे अपने गुरू का प्रतीक मानकर अपना अभ्यास करूंगा मैं, वह सोच रहा था ।

समाचार था कि जब पाण्डवों को भयभीत देखकर श्रीकष्ृ ा कहने लगे कि हे पाण्डव ! द्रोणाचार्य धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके हाथ में धनुष रहने पर इन्हें कोई भी जीत नहीं सकता। जब तक ये हथियार न डाल दें तब तक इनका कोई भी वध नहीं कर सकता। उन्हे हराने की क्षमता विश्व में मात्र भगवान परशुराम के अतिरिक्त किसी अन्य में नही है । अब तो हमे राजनीति या कूटनीतिक युद्धप्रणाली से काम लेना होगा ।.....मैं समझता हूँ अश्वत्थामा के मारे जाने पर ये युद्ध नहीं करेंगे। अतः कोई आकर इन्हें अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुना दे, तो ये युद्ध से विरत हो जायेंगे ।

यह सुनकर भीम और नकुल सहदेव प्रसन्न हुए, अर्जुन किंचित उदास हुआ पर चुप रहा।

हां, युधिष्ठिर ने इस बात को बड़ी कठिनाई से स्वीकारा।

विचार विमर्श के बाद श्रीकृष्ण ने ही उपाय खोजा- पाण्डवों के पक्ष में युद्ध कर रहे मालवा के राजा इन्द्रवर्मा के पास अश्वत्थामा नाम का एक हाथी था। योजना के अनुसार अपनी ही सेना के उस हाथी को भीमसेन ने गदा से मार डाला। उसके पश्चात् वह द्रोणाचार्य के सामने जाकर जोर जोर से कहने लगा, "अश्वत्थामा मारा गया। अश्वत्थामा मारा गया।"

आचार्य द्रोण को भीमसेन की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने धर्म से विचलित होकर धृष्टद्युम्न पर धावा बोल दिया। उसके ऊपर अनेकों बाणों की वर्षा कर दी।

यह देखकर पांचाल महारथियों ने धृष्टद्युम्न की रक्षा की। उस युद्ध में धृष्टद्युम्न तो बच गया किन्तु पांचाल महारथियों का सफाया हो गया।

आचार्य को भीमसेन के कथन पर विश्वास नहीं हुआ, हां उन्हे एक चिन्ता जरूर हो ने लगी थी , तो उन्होंने व्यथित होकर युधिष्ठर से पूछ लिया, "क्या वास्तव में अश्वत्थामा मारा गया ?"

इस संदर्भ मे एकलव्य सोचने लगा- आचार्य द्रोण जानते थे कि युधिष्ठिर राज्य पाने के लिये झूठ नहीं बोल सकते। लेकिन युधिश्ठिर भी राज्य के लोभ में आ गये होंगे। जब इनके समक्ष मैंने अपना अंगुष्ठ काटकर श्री गुरूदेव के चरणों में अर्पित किया। उस दिन भी ये अपने भ्राता को श्रेष्ठ देखने के लोभ में आ गये।

युधिष्ठिर चुपचाप खड़े थे कि क्या उततर दें कि इसी समय भीमसेन युधिष्ठिर के पास जाकर बोला- '' आप स्मरण करकें भ्राता कि आचार्य द्रोण के बध का उपाय सुनकर मैंने अपनी सेना के अश्वत्थामा हाथी को मार डाला है। आपको मात्र यह कहना है कि हां अश्वत्थामा मारा या गया है, आप को पाप भी नहीक लगेगा और असतय भाषण के दोषी भी नहीं होगे,क्यों कि सचमुच अश्वत्थामा मर चुका है, ये कौन पूछता है िकवह कौन मरा हाथी या मनुष्य।''

द्वंद्व में फंसे युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास जाकर बोले, "अश्वत्थामा मारा गया।"

उन्होंने यह वाक्य उच्च स्वर में कहने के पश्चात धीमें से कह दिया, "पता नहीं वह नर था अथवा हाथी।"

युधिष्ठिर की धीमें कही हुई बात को आचार्य सुन नहीं पाये। उन्हें युधिष्ठिर की बात का पूरा विश्वास हो गया। वे पुत्र शोक में डूब गये और हथियार फेंक दिये। धृष्टद्युम्न ने जब द्रोणाचार्य को शोकाकुल देखा तो इस स्थिति का लाभ उठाने के लिये उसने आचार्य पर तीव्र प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे वह अपने पिता द्रुपद का बदला चुकता कर सके। धृष्टद्युम्न के तेज प्रहार से आचार्य को मूर्छा आ गई। एक क्षण में वे सम्हले और प्रहारों को काटते रहे। इसके पश्चात उन्होंने धृष्टद्युम्न के घोड़े को मार डाला। आचार्य द्रोण ने धृष्टद्युम्न का वध करने की इच्छा से एक उत्तम बाण चलाया। सात्यकी यह सब देख रहा था उसने उस तीक्ष्ण बाण को काट दिया।

इस समय युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीमसेन आचार्य के निकट पहुँच गये। उसी समय आचार्य के बांये अंग फड़कने लगे। वे और अधिक घमासान युद्ध करने लगे। भीमसेन तो झूठों में प्रमुख है ही। उसने आचार्य के रथ के पास जाकर कहना शुरू कर दिया, "आचार्य यदि ब्राह्मण अपना धर्म छोड़कर युद्ध न करते तो आज क्षत्रियों का भीषण संहार न होता। प्राणियों की हिन्सा न करना सभी धर्मो में श्रेष्ठ बतलाया गया है। आप ब्राह्मणों ने ही ये नियम हम सभी के लिये बनाये हैं। आप हैं कि उन्हीं नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं। आप तो गुरूदेव उन

ब्राह्मणों में भी सबसे श्रेष्ठहैं। आपने ब्राह्मण होकर भी स्त्री पुरूष और धन के लोभ में इन क्षत्रिय राजाओं का संहार कर डाला हैं। जिसके लिये आपने अस्त्र उठाये हैं, आप जिसका मुख देखकर जी रहे हैं वह अश्वत्थामा तो आपकी दृष्टि से दूर मरा पड़ा है। इन कौरवों ने आपको इसकी सूचना तक नहीं दी। धर्मराज

युधिष्ठिर के कहने पर भी आप को विश्वास नहीं हुआ।'

जब भीमसेन की यह बातें सुनी तो द्रोणाचार्य ने तत्काल धनुष डाल दिया। अपने पक्ष के वीर योद्धाओं से पुकार कर कहने लगे, "कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन अब तुम लोग स्वयं युद्ध के लिये प्रयत्न करो। अब मैं तो अस्त्रों का त्याग करता हूँ। यह कहकर उन्होंने करूण स्वर में अश्वत्थामा का नाम ले लेकर पुकारा। उसके पश्चात वे रथ के पिछले भाग में जाकर ध्यान में बैठ गये। युद्वभूमि में इस प्रकार ओम् की धारणा करके उस अविनाशी परमात्मा के ध्यान में लीन हो गये जिसमे बडे बडे सन्तों के सामर्थ्य की बात नहीं है।

इसी समय धृष्टधुम्न तलवार लेकर उनके पास पहुंच गया। वे तो योग निष्ठ थे वे योग धारण के द्वारा पुराण पुरुष विष्णु के ध्यान में थे। उन्होंने मुंह को कुछ उपर उठाया और सीने को आगे की और तानकर स्थिर किया, फिर विशुद्ध तत्व में स्थित होकर हृदय कमल में एकंाक्षर ओम् ब्रह्म की धारणा करके अविनाशी परमात्मा में लीन हो गये। यह सब देखकर भी धृष्टधुम्न ने अपनी तलवार से उनका सिर काट लिया।

समाचार पूरा होते होते एकलव्य के मन में क्षोभ पैदा हो चुका था, वह गुरूद्रोही धृष्टद्युमन के प्रति क्रोध से भर चुका था ।

वह सोच रहा था .....पुत्र मोह के चिन्तन में आचार्य कैसे ओम् ब्रह्म के ध्यान में समाधिस्त हो पाये होंगे ?.....इस स्थिति में क्या पुत्र का एक पल के लिये भी ध्यान हट पाया होगा ? .....कैसे ओम् ब्रह्म की बातंे संजय जी से जानकर गुप्तचर पुष्पक ने भेज दी है। यह कल्पना वास्तविक सत्य से प्रथक लगती है।.सहसा उन्हे लगा.....मैं भी कैसा हूँ ? गुरुदेव के सम्बन्ध में भेजी इस उत्कृष्ट सूचना पर सन्देह कर रहा हंू। वे कोई साधारण योगी नहीं थे। मैं आज तक गुरुदेव को दर्शन से पृथक मानता रहा। उन्हांेने इस विधि के द्वारा युद्धभूमि में प्राण त्याग करके हमें यह सन्देश दे दिया है कि वे दर्शन से दूर नहीं थे। दुर्भाग्य यह रहा है कि उन्हें दर्शन के जिज्ञासु शिष्य ही नहीं मिले। इसमें आचार्य का क्या दोष ? वे बलपूर्वक किसी को दर्शन तो नहीं सिखा सकते थे। मैं तो अपने प्रश्नों से दूसरो के उत्तर जोड़ने में अभ्यस्त हो गया हूं। हम चाहे तो अपने मन को कैसे भी समझा सकते हैं। सब अपनी दृष्टि, अपने अन्तः के प्रश्न और उत्तर हैं। इस घटना का वर्णन हमारा गुप्तचर पुष्पक संजय के अनुसार न करता तो मै उनकी मृत्यु के बारे में सत्य को भी नहीं जान पाता। इस घटना के बाद तो मुझे इस युद्ध से कोई मोह नहीं रह गया।

एकलव्य ने तत्काल मन्त्री चक्रधर को सूचित करके, अपने गुप्तचर पुष्पक को युद्धभूमि से वापस बुला लिया।

बाद में उनने अपने नाविकों से सुना कि यह युद्ध अठारह दिनों तक चलता रहा। भीषण मार काट के पश्चात् विजय श्री पाण्डवों को मिली। युधिश्ठिर का राज्याभिषेक हो गया।

0000

कौरव पाण्डवों के युद्ध उनके जीवन और उनके विचारों के बारे में जन जन में नाना प्रकार की कथायें प्रचलित थीं ।

निषादमुनि पुरम के एक मोहल्ले में एकत्रित हो गये लोगों को में ऐसी ही एक जन श्रुति सुना रहे थे कि मुरदानव की कामकटंकटा नाम की परमसुन्दरी कन्या थी। उन्होंने शर्त रखी कि जो वीर मुझे पंजा लड़ाने में हरा देगा। मैं उसी के साथ विवाह करूँगी। यह प्रण सुन कर अनेक पराक्रमी वीर आये और हार मान कर चले गये। परमवीर घटोत्कच भी आया।

उपस्थित लोगों ने एकस्वर में मुनि से पूछा, कौन घटोत्कच ?

मुनि ने सुनाया -वनवास और अज्ञातवास के दिनों में महावीर पाण्डुनन्दन भीमसेन ने हिडिम्बा नामकी राक्षसी से विवाह किया था। उससे इस महाबलशाली पुत्र घटोत्कच का जन्म हुआ। यह घटोत्कच बड़ा मायावी था सो

दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा । जल्दी ह ीवह जवान हो गया और इस कन्या कामकंटका को पंजा लड़ाने में हराकर घटोत्कच ने मुरदानव की पुत्री कामकटंकटा से विवाह किया। जिससे बर्बरीक नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

बर्बरीक का नाम सामने आते ही यत्रतत्र इस नाम की चर्चा सुनाई पड़ी।पुरम के लोगों ने यह नाम सुन रखा था ।

मुनि ने बताया-बर्बरीक जन्म से ही विजयी धर्मात्मा एवं वीर पुरूश था।

एक बार घटोत्कच उसे अपने साथ लेकर श्रीकृष्ण से मिलने द्वारकापुरी गये। बर्बरीक ने हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से प्रश्न किया, ''हे मामाजी संसार में अनेक कल्याणकारी मार्ग हैं। कोई ज्ञान को, कोई तप को, कोई धन को, कोई भोगों को, कोई योग को और कोई मोक्ष को, इन सैंकड़ों श्रेष्ठमार्गों में से सभी अपने अपने मन के अनुसार श्रेष्ठबतलाते हैं। श्रीमान मुझे मेरे कुल के अनुरूप श्रेष्ठमार्ग सुझायें।''

श्रीकृष्ण प्रश्न सुनकर एकक्षण तक विचार मुद्रा में रहने के बाद बोले, ''बेटा वैसे तो सभी मार्ग श्रेष्ठहै किन्तु तुम्हारे क्षत्रिय कुल उत्पन्न होने से अतुलनीय बलप्राप्ति का उद्योग करो और महीसागर संगम तीर्थ जाकर देवर्शि नारद द्वारा लायी हुई नव दुर्गाओं की आराधना करो।''

उनका आदेश पाकर वह उन देवियों की आराधना करने चला गया। आराधना से प्रसन्न होकर देवियों ने उससे प्रत्यक्ष होकर कहा, ''तीनों लोकों में जो बल किसी में नहीं है ऐसा दुर्लभ अतुलनीय बल हम तुम्हें प्रदान करते हैं। कुछ समय यहीं निवास करो। यहाँ विजय नामक के ऋषिआयेंगे। उनके संग से तुम्हारा और अधिक कल्याण होगा।''

आज्ञा के अनुसार बर्बरीक उस समय तक वहीं रहकर साधना करता रहा। जब मगध देश से विजय नामक ऋषि वहाँ आये और विद्याओं की सफलता के लिये बहुत दिनों तक देवियों की उपासना करते रहे। बर्बरीक सावधानी से उनकी रक्षा करने लगा। उसने उनके तप में विघ्न पहुँचाने वाले रोपलेन्द्र नामक महादानव और द्रुहद्रुहा नामकी राक्षसी का सहज ही संहार कर दिया।

पाताल जाकर उसने पाताल में नागों को पीड़ा पहुँचाने वाली पलाशी नाम के भयानक असुरों को रोंदकर यमलोक भेज दिया। इससे वासुकि उससे प्रसन्न हो गये। नाग कन्यायें उस पर मोहित हो गई। उन्होंने बर्बरीक के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु उसने बताया कि मैंने ब्रह्मचर्य व्रत ले रखा है इसलिए विवाह संभव नहीं है।यह कह कर वह तपस्थली लौट आया और विजय ऋषि के तप पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगा ।

अज्ञातवास के समय में भटकते हुए पाण्डव द्रोपदी सहित उस तीर्थ में पहुँचे। उस देवी के दर्शन कर हारे थके वहीं बैठ गये। बर्बरीक उन दिनों वहीं था किन्तु वे एक दूसरे को पहिचान नहीं सके। प्यास से पीड़ित भीमसेन कुण्ड मे जल पीने उतरे। थकान मिटाने के लिए पहले उस कुण्ड में उन्होंने हाथ पैर धोये। इसे देख बर्बरीक ने उसे डांटकर कहा, ''तुम देवी के कुण्ड में हाथ पैर धोकर जल को दूशित कर रहे हो। मैं देवी को इसी के जल में प्रतिदिन स्नान कराता हूँ। तुम्हें इतना ज्ञान नहीं, फिर व्यर्थ तीर्थों में क्यों घूमते हो।''

भीमसेन गरजे, ''अरे मूर्ख! ये जल स्नान के लिये है। तीर्थ में स्नान करने की आज्ञा है।''

बर्बरीक ने उसी भावभूमि से उत्तर दिया, ''लेकिन जिन सरिताओं या स्रोतों का जल बहता है ऐसे तीर्थों में जल के भीतर जाकर स्नान करने की विधि है। कूप और सरोवर से तो जल लेकर बाहर स्नान करना चाहिये।''

बर्बरीक की शास्त्र सम्मत बात पर भीमसेन ने ध्यान नहीं दिया। यह देख कर गुस्साये हुए बर्बरीक ने वहां पड़े पााषाणखण्ड उठाए ओर उन पाशाण खण्डों से भीम के मस्तक पर प्रहार करना शुरू कर दिया। आघात बचाकर भीमसेन कुण्ड से बाहर निकले और दोनों में मल्ल युद्ध हुआ। दो घड़ी में भीमसेन दुर्बल पड़ गये। बर्बरीक ने भीमसेन को सिर पर उठाया और समुद्र में फेंकने के लिये चल पड़ा। मार्ग में उसे एक जटाजूट धारी महात्मा दिखे। महात्मा ने भीमसेन और बर्बरीक को पहिचानते हुये कहा,'' अरे अरे ! पुत्र यह क्या करने जा रहे हो। वह तो तुम्हारे पितामह भीमसेन हैं।''

उनकी बात सुनकर बिस्मित बर्बरीक ने भीम को ं ससम्मान सिर के नीचे उतारते हुये कहा, ''पितामह क्षमा करें।अनजाने में यह क्या अपराध हो गया होता ?''

भीमसेन ने उसे छाती से लगाते हुये कहा, ''बेटा इसमें तुम्हारा कोई दोश नहीं है। भूल हमारी थी । नीति कहती है कि कुमार्ग गामी को क्षत्रिय द्वारा दण्ड दिया जाना चाहिय,तुम वही कर रहे थे। तुम्हें पाकर मेरे पूर्वज धन्य हैं कि हमारे कुल में ऐसा वीर धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ है।''

ऐसा कह कर भीम अपने भाइयों के साथ वह स्थान छोड़ कर चले गये ।

उधर तप पूर्ण होने पर जब बर्बरीक उस तपस्थली से लौटने लगा तो उन ऋषिने उससे कहा, ''मैंने तुम्हारे संरक्षण से सिद्धि प्राप्त की है। मेरे हवनकुण्ड में सिन्दूर के रंग की परम पवित्र भस्म है उसे तुम ले लो। तुम्हारे विरूद्ध युद्धभूमि में इस भस्म को छोड़ देने पर मृत्यु भी शत्रु बनकर आ जायें तो उसे भी मरना पड़ेगा। तुम अब शत्रुओं पर सरलता से विजय प्राप्त कर सकोगे।''

बर्बरीक ने वह भस्म ली और चला आया ।

जब पाण्डवो के वनवास की अवधि समाप्त हुई। दुर्योधन ने उन्हें राज्य न लौटाया तो कुरूक्षेत्र के मैदान में युद्ध की तैयारी होने लगी। पाण्डवों नेअपने पक्षधरों को इकटठा किया और उ शिविर में बैठकर सभी योद्धा अपने अपने बल, पराक्रम, पौरूश की पशंसा करने लगे। अर्जुन अपने पराक्रम की प्रशंसा करते हुये बोले, ''मैं अकेला कौरव सेना को एक दिन में नश्ट करने में समर्थ हूँ।''

यह बात सुनकर बर्बरीक से न रहा गया, बोला, ''मेरे पास ऐसे दिव्य अस्त्र शस्त्र एवं एक ऐसा पदार्थ हैं कि मैं एक क्षण में ही सारी कौरव सेना को यमलोक भेज सकता हूँ ?''

श्रीकृष्ण को उसकी यह बात अहं से परिपूर्ण लगी। इसलिये उन्होंने उससे पूछा, ''बेटा भीश्म पितामह से रक्षित उस कौरव सेना को तुम एक मुहूर्त में कैसे मार सकोगे ?''

श्रीकृष्ण का यह प्रश्न सुनकर वह बोला, ''आपको दिखाने के लिए मैं अभी एक मुहूर्त में सामने खड़े आस्वत्थ वृक्ष के प्रत्येक पत्ते को बेध कर नश्ट कर देता हूँ।''

यह कहकर उसने अपना धनुश चढ़ा लिया। उस पर बाण रखा। भीतर से पोले बाण में उसने वह सिंदूरी रंग की भस्म भरकर, कान तक खींचकर छोड़ा। इधर श्रीकृष्ण ने चुपके से उस वृक्ष के नीचे पड़े एक पत्ते पर अपने पैर का पंजा रख लिया।

उधर उस बाण से सिन्दूर जैसी भस्म वृक्ष और उसके सम्पूर्ण पत्तों पर पड़ी। वे जलकर खाक हो गये। इस समय वह अग्नि श्रीकृष्ण के चरण के पास आते दिखी। श्रीकृष्ण ने उस पत्ते से पैर हटा लिया। अग्नि ने वह पत्ता भी जला दिया। श्रीकृष्ण इस बात पर गहराई से विचार करने लगे कि इसका अहंकार इतना बढ़ गया। इसने मेरे पैर तले के पत्ते को भी नहीं छोड़ा। हमारी दोनों सेनाओं में अनेक वीरों को देवताओं से एवं ऋशियों से वरदान प्राप्त है। यह उन वरदानों को व्यर्थ करने में समर्थ है। ऐसे तो अधर्म हो जाएगा, जबकि मैंने धर्म की मर्यादा का व्रत लिया है। मुझे धर्म की रक्षा करना चाहिए ।

यह सोचकर श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से सभी के देखते देखते उसका सिर काट लिया।

यह सुनकर सब लोग हाय हाय कर उठे। वे सब श्रीकृष्ण की ओर बिस्मय से देखने लगे । कथा सुन रहे सम्पूर्ण निषादपुरम के वासियों कों श्रीकृष्ण का यह आचरण शोभनीय नहीं लगा।

मुनि ने आगे बात बढ़ाई-पाण्डव भी श्रीकृष्ण के इस कार्य से भौंचक्के रह गये। वे शोक में डूब गये। पुत्रशोक से वीर घटोत्कच मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। भीमसेन ने श्रीकृष्ण पर अपशब्दों की बौछार कर दी। अन्य पाण्डव सोचने लगे, ''श्रीकृष्ण कौरवों के साथ तो नहीं मिल गये हैं ? जो इनने हमारे पक्ष का इतना बड़ा योद्धा मार डाला ।अरे ! युद्ध में इससे श्रीकृष्ण को इतना डर था तो हम सब मिलकर इसे युद्ध से दूर रहने के लिए बाध्य कर देते।''

सभा में मौजूद अन्य वीर जो श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे वे तो इसमें भी पाण्डवों का गुप्त हित देख रहे थे। बर्बरीक के पूर्वजन्म से इसकी कथा जोड़कर इंद्रवमार्र श्री कृष्ण के इस कृत्य को वैद्य ठहराते हुये बोले, ''बर्बरीक पूर्व जन्म में सूर्यवर्चा नामक बड़ी वीर एवं मायावी यक्ष था। तब की ही बात हे कि एक बार समस्त देवता धर्म की हानि देखकर जब ब्रह्माजी को साथ लेकर मेरू पर्वत पर एकत्रित होकर भू का भार उतारने के लिये श्री नारायण से स्तुति कर रहे थे, तब उस सूर्यवर्चा नाम के यक्ष ने कहा, ''इस काम के लिए भगवान को कष्ट क्यों देते हों ! पृथ्वी का भार तो मैं ही दूर कर दूगाँ।''

यक्ष का अभिमान में डूबा यह वाक्य सुनकर ब्रह्माजी उससे रूश्ट हो गये। उन्होंने उसे शाप दे दिया कि तुम राक्षस योनि में चले जाओं । यक्ष ने तुरंत ही अपनी त्रुटि मानी ओर चरणों में गिर कर अभिशाप वापस लेने की प्रार्थना की तो ब्रहमा जी ने कहा कि ष्शाप तो वापस नही होगा, हां भू भार दूर करते समय श्री नारायण तुम्हारा बध करेंगे, तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। इस जन्म में बर्बरीक के उसी शाप के कारण श्रीकृष्ण ने बर्बरीक का वध किया है।

बेचारे पाण्डवों को इन तथ्यों को सत्य मान कर चुप रह जाना पड़ा। क्योंकि वे इस स्थिति में श्रीकृष्ण को नाराज नही कर सकते थे ।

उदास पाण्डवों को सन्तुश्ट करने के लिये श्रीकृष्ण ने बर्बरीक के उस कटे लेकिन जीवित व्यक्ति की तरह पलकें झपकाकर ताकते जमीन में पड़े सिर से पूछा, ‘‘तुम्हारी क्या इच्छायें हैं ?’’

उसने कहा, ‘‘एक तो मैं महाभारत का युद्ध देखना चाहता हूँ दूसरे मैं विवाह करना चाहता हूँ।’’

पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिये कृष्ण ने उस सिर को कुरूक्षेत्र के बीचों बीच खड़े एक विशाल छंेकुर के वृक्ष पर टाँग दिया जिससे वह महाभारत का युद्ध देख सके।

विवाह के प्रश्न पर श्रीकृष्ण बोले, ‘‘तुमने दूसरी इच्छा विवाह की बताई है, तुम्ही कहो कि उन दिनों इतनी नाग कन्यायें तुमसे विवाह करना चाहतीं थी। तब तुमने अपने ब्रह्मचर्य की बात कह कर उनसे विवाह नहीं किया , अब क्यों चाहते हो । अब विवाह सम्भव नहीं है। फिर भी तुम्हारी इच्छा विवाह करने की है तो वैदिक संस्कृति को मानने वाले, अपने घरों में हरेक विवाह के समय तुम्हारे सिर के रूप में बरोना का पहले पूजन किया करेंगे। वर आगमन से पूर्व द्वार पर प्रथम तुम्हारा सिर बरोना के रूप में पूजा जायेगा और विवाह मण्डप में प्रथम पूजन के लिये रखा रहेगा, इस तरह तुम्हारा अप्रत्यक्ष विवाह हो जाया करेगा।’’

श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को सन्तुश्ट करने के लिये बर्बरीक को यह वरदान भी दिया कि तुम मेरे अपने श्याम के रूप में पूजे जाते रहोगे।

मुनि ने कथा आगे बढ़ाते हुए आगे सुनाया कि महाभारत का युद्ध अठारह दिनों तक चलता रहा। युद्ध समाप्ति के बाद सभी पाण्डवों को यह अहम् हो गया कि महाभारत का युद्ध उनने ही अपने बाहुबल और बूद्धिबल से जीता है। जब यह बात श्री कृष्ण को ज्ञात हुई तो वे पाण्डवों से बोले, ‘‘इस युद्ध को बर्बरीक पलकं झपकाए बिना निरंतर यह युद्ध देखता रहा है । चलें हम बर्बरीक के सिर से पूछ कर देखें यह युद्ध किसने जीता है।’’

पाण्डव बर्बरीक के सिर के समक्ष जा पहुँचे। युधिश्ठिर ने प्रश्न किया, ‘‘बेटा इस महाभारत के युद्ध का विजेता कौन है ?’’

प्रश्न सुनकर बर्बरीक बोला, ‘‘युद्ध में विजय तो श्रीकृष्ण जैसे रूप वाले पुरूश की हुई है। क्योंकि मुझे तो चारों ओर वही एक पुरूष कोरव वीरो ंको मारते घूमता दिखाई दे रहा था । मैंने उस पुरूश की चार भुजायें देखीं वे चारों भुजाओं में दिवय अस्त्र लिये थे। उनके मस्तक पर दिव्य मुकुट सुशोभित था। वे साक्षात् कालपुरूश ही लगते थे। वे अपने सुदर्शन चक्र से जिसकां संहार करते उसे ही पाण्डव वीरों के अस्त्र अपना लक्ष्य बना कर अपना अस्तित्व प्रदर्शित कर देते थे।

बन्धुओं, बर्बरीक द्वारा कही गई ऐसी बातों को पाण्डव चाहे सच मान रहे हा,ें किन्तु ऐसे बहुरूपिया पुरूष के रूप पर हम निशादों का विश्वास नहीं टिक पा रहा है। भला यह कैसे संभव है कि एक व्यक्ति अकेला सबको मारता फिरे ओर दूसरों को दिखाइ्र न दे ।यह कह कर मुनि ने कथा समाप्त की ।

000

पुष्पक अपनी पत्नी को समाचार सुना रहा था कि उसने गत दिनों बड़ा अजीब घअनाक्रम समीप से देखा । वह वर्णन करने लगा ओर उसकी पत्नी ध्यान से सुनने लगी ।

.....जब राजा पौण्डू (करूश) कुमायु की गद्दी पर बैठा। श्रीकृष्ण से द्वेश भावना रखने लगा। पौण्डु को पता चल गया कि हमारे निषादराज अर्जुन की श्रीकृष्ण से घनिश्ठ मैत्री के कारण उनसे द्वेशभाव रखते हैं। वह निषादराज से मिला। उसके स्वागत में निषादपुरम को बन्दनवारों से सजाया गया।

.....जब दोनों की बैठक निषादपुरम के राजप्रासाद में हुई, पौण्डु अपनी वीरता की उनसे बढ़ चढ़कर बातें करने लगा, ''मित्र निषादराज , तुमहे संभवतः ज्ञात नहो कि मैं ही बिश्णु का अवतार हूं । मैं ही वासुदेव हूं जबकि द्वारका में रहकर श्रीकृष्ण झूठा वासुदेव बना हुआ है । मैं श्री कृष्ण को कुछ ही पलों में मिट्टी में मिला दूँगा। इस कार्य में मुझे तुम्हारा साथ मिल जाये तो मैं द्वारिकापुरी को तो क्या इन्द्रप्रस्थ को भी अपने आधीन कर लूँगा। निषादराज आप गदा युद्ध में प्रवीण हैं। द्वारिकापुरी पर आक्रमण के समय तुम्हें बलवान को गदायुद्ध में परास्त करना है। तुम्हारे अठासी हजार वीर योद्धा भी युद्ध प्रवीण हैं। आज तुम्हारे समान सम्पूर्ण आर्यावर्त में कोई योद्धा नहीं है।''

निषादराज अपनी वीरता की बातें सुन सुनकर गद्गद् हो रहे थे। उन्होंने पौण्डु को साथ देने का वचन दे दिया।

गुप्तचर पुश्पक अर्थात मुझ को निषादराज एकलव्य ने यह क्या उत्तरदायित्व सौंप दिया कि द्वारिकापुरी पर आक्रमण के समय युद्ध के मैदान मे मौजूद रह कर वह उन्हें वहाँ की सूचनाओं से अवगत कराता रहें। किन्तु मैं पुष्पक जानता हूं कि एक दो सहयोगियों से संपूर्ण युद्धभूमि की बातें ज्ञात करना खेल नहीं है । फिर भी मेरी लम्बे समय से, निषादराज को युद्ध करते हुये देखने की इच्छा थी। इस कारण मैंने यह राजाज्ञा मन मान कर ंस्वीकार कर ली ।

निर्धारित योजना के अनुसार निषादराज आक्रमण करने के लिये द्वारिकापुरी जा पहुँचे। पुष्पक ने सोचा- पौण्डु (करूश) कुमायूं से चल पड़ा होगा। वह भी यहाँ आने ही वाला होगा। उधर द्वारका में ज्यों ही सूचना पहुंचेगी वहां से कोई महाबली आएगा ।

सचमुच ही निषादराज के आक्रमण की सूचना द्वारिकापुरी पहुँच गई थी। बलराम अपनी सेना के साथ युद्ध के मैदान में आते दिखाई पड़े। दर्शक बने रहने के लिये मैं एक टीले पर जाकर खड़ा हो गया। मैने अपने सामने तीव्र गति से एकलव्य की ओर बढ़ते हुये बलराम को देखा। उनका लम्बा चौड़ा श्वेत आभा वाला शरीर लम्बी लम्बी भुजायें, बलिश्ठ कन्धे थ्ो और चमचमाता अश्टधातु का हल उनके कन्धे की शोभा को बढ़ा रहा था। उनकी गति सर्प की गति की तरह तीव्र थी । ललाट पर वैश्णवी चन्दन उनके व्यक्तित्व को सभी से पृथक कर रहा था। इस समय मेरा मन उनकी तुलना निषादराज एकलव्य से करने लगा - हमारे निषादराज इससे कहीं कम नहीं दिखते। इनकी श्वेत श्याम आभा बलराम से पृथक व्यक्तित्व प्रगट कर रही है।

जैसे ही बलराम निषादराज को पास आते दिखे। एकलव्य ने अपना परिचय देने के लिये लोहे के सनसनाते बाण छोड़े। वे बाण बलराम के सामने जाकर जमीन में गड़ गये। बलराम चौक कर खड़े हो गये।

निषादराज का स्वर सुनाई पड़ा-''बलराम SS मैं, एकलव्य। अरे ! खड़े क्यों रह गये। युद्ध करें।''

बलराम ने अपना धनुश सम्हाला, उनने लगातार दस बाण चलाकर निषादराज को घायल कर, उनका धनुश काट डाला। उनका बाण चलाना अनवरत जारी रहा। उन्होंने एकलव्य के रथ को छिन्न-भिन्न कर डाला। एक भल्लास्त्र से उनके रथ की ध्वजा काट डाली।

निषादराज एकलव्य की मुखाकृति लज्जा से रक्तिम हो गई। उन्होंने दूसरा श्रेष्ठधनुश लेकर बाण चलाना प्रारम्भ किये और बलराम को बाण विद्ध कर दिया। बाण विद्ध होने पर बलराम ने दीर्घ श्वांस ली। उनने पुनः बाण चला कर दस सर्प सदृश्य बाणों से एकलव्य के उस धनुश का भी मुश्टि भाग काट डाला।

क्रोध में लाल पीले होकर, एकलव्य ने एक भयानक खड्ग फेंककर बलराम पर प्रहार किया। किन्तु रणपटु बलराम ने अपने ऊपर गिरने से पूर्व ही बाणों से उसे छिन्न-भिन्न कर डाला।

मुझ को विचार आ रहा था, अर्जुन ने कर्ण के सूत पुत्र होने से उससे युद्ध करने से इन्कार कर दिया था। ठीक इसी तरह बलराम को भी एकलव्य से युद्ध न करने के लिये यही कहना चाहिये था, पर उनने ऐसा नहीं कहा। निश्चय ही बलराम ने एकलव्य को युद्ध के योग्य समझा होगा। उससे युद्ध करने लगे हैं। इसका अर्थ है बलराम जाति के कारण किसी को छोटा नहीं मानते। अरे ! मैं निषादराज का कैसा गुप्तचर हूँ जो शत्रु के स्वभाव की प्रशंसा करने लगा।

.....अरे, यह क्या ! हमारे निषादराज ने काले लोहे का बना दूसरा खड्ग उठा लिया और उसे अपनी बलिश्ठ भुजाओं से ऊपर उठाकर बलराम की ओर फेंका। वह खड्ग बलराम के पास पहुंचता,कि उसके पहले ही बलराम ने उसे बाणों से आकाश में ही छिन्न-भिन्न कर दिया।

निषादराज ने घंटामाला समाकुल शक्ति को लेकर बलराम के ऊपर फेंकी। वह शक्ति उनके पास पहूँची तो प्रणाम कर के उन्होंने उसे हाथ से थाम लिया और उसी को वापस कर निषादराज की छाती पर प्रहार किया। इससे वे व्याकुल होकर छाती पर गिर पड़े। उस समय एकलव्य के प्राण जोखिम में पड़ गये।

मैं सोचने लगा कि इस धरती पर वीरता का कैसा दुरूपयोग है , ये कैसे वीर हैं जो एक दूसरे को मारने पर तुले हैं।कहीं इनकी वीरता का उद्देश्य सृजन होता, तो इस धरती का अलग ही रूप होता।किन्तु ये सब के सब विनाश के मुहाने पर खड़े हैं। इस समय मेरा क्या दायित्व है ? क्या करूँ ? कैसे निषादराज के प्राण बचाऊँ।

इसी समय देखता हूँ कि महारानी वेणू उनके पास सेवा करने पहुँच गई है। मैं विवश खड़ा यह देख ही रहा था उसी समय हमारे अट्ठासी हजार वीर योद्धा एक साथ मिलकर बलराम और यादव महावीरों पर टूट पड़े।

बलराम एक एक कर उन्हें मारने लगे। एक हाथ से हल के सहयोग से उन्हें अपनी ओर खींचते, दूसरे हाथ में पकड़े मूसल से उन्हें कुचल देते। इस प्रकार मैं अपने वीरों को फटी फटी आँखों से धराशायी होते देखता रहा। कुछ ही समय में वे सभी को धराशायी करके युद्धभूमि में अपनी विजय की गर्जना करने लगे।

महारानी वेणु एकलव्य को मूर्छा से जगाने के लिये जोर-जोर से झकझोर रही थी। गर्जना सुनकर एकलव्य की मुर्छा हटी। वे खड़े हो गये। इधर उधर अपनी सेना को नश्ट भ्रश्ट देखा। कुपित होकर निषादराज ने गदा उठाली और गर्जना करते हुये बलराम की ओर झपटे ओर उनके कन्धे में जोर से एक गदा मारी। हलधर बलराम ने भी अपनी गदा सम्हाली और एकलव्य पर प्रहार किया। दोनों में भीशण गदा युद्ध होने लगा। वे आपस में एक दूसरे के घात प्रतिघात सहने लगे। गदा युद्ध का शोर युद्ध भूमि के सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त हो गया।

इसी समय पौण्डु ने युद्धभूमि में प्रवेश किया। यह देखकर मुझ पुश्पक को लगा, ‘‘यह कितना बड़ा राजनीतिज्ञ है। एक दिवस से घमासान युद्ध चल रहा है। श्रीमानजी युद्धभूमि में अब पधारे हैं। अरे ! इस पौण्डु ने युद्धभूमि में आते ही वृश्णि नन्दन सात्यकि पर गदा का प्रहार कर दिया। युयुधान ने यह देखकर अपने गदा का प्रहार पौण्डु पर किया।

इस तरह चार चार महावीर युद्ध में प्रवृत हो गये। उस रात्रि गदा युद्ध का शोर अत्यधिक बढ़ गया।

रातभर युद्ध होता रहा।

सूर्य उदय हो गया। पता चला, बद्रीका आश्रम से श्रीकृष्ण आ गये। उन्होंने अपनी उपस्थिति से अवगत कराने के लिये एवं यादव वीरों में उत्साह भरने के लिये अपना पांचजन्य शंख बजाया। यादव सेना में हर्श की लहर दौड़ गई।

श्रीकृष्ण को अपने पास से निकलते पाकर मैं उन्हें देखते ही रह गया। एक तरफ सजावट के उपकरणों से सजा सम्हला पौण्डु और दूसरी ओर मोर मुकुटधारी श्रीकृष्णकी नीले आकाश सी छवि, तन मन को झन्कृत करने लगी। शायद इसीलिये लोग इनकी छवि के प्रशंसक हैं। आज मैं पहली बार सामने से उनके दर्शन कर पा रहा था।

युद्धभूमि में आकर उन्होंने पुनः पांचजन्य से युद्ध का उद्घोश किया। हमारे मित्र राजा पौण्डु सात्यकि से जूझ रहे थे। वे श्रीकृष्ण को देखकर सात्यकि को छोड़कर श्रीकृष्ण की ओर बढ़े। जब श्रीकृष्ण ने पौण्डु को अपने से युद्ध के लिये उत्सुक देखा तो वे सात्यकि को युद्ध से रोकते हुये बोले, ‘‘सात्यकि, उसकी जैसी रूचि हो वही करने दो।’’

उनके वचन सुनकर सात्यकि शान्त रह गया। अब श्रीकृष्ण की दृश्टि निषादराज एकलव्य और भैया बलराम की ओर हुई। श्रीकृष्ण के निर्देश पर उनके सारथी ने रथ बलराम और निषादराज की ओर बढ़ाया। एक क्षण तक वे दोनों वीरों के गदायुद्ध का निरीक्षण करते रहे। उन्हें लगा, वे दोनों वीर जन्म जन्मान्तर तक लड़ते रहे तो भी हार मानने वाले नहीं ैं इसलिये उनका स्वर मुखरित हुआ, ‘‘निषादराज और भैया बलराम आप दोनों युद्ध

बन्द कर दें। युद्ध तो अब मेरा और पौण्डु का होना है। हमारा युद्ध निषादराज के मन में व्याप्त संसय को दूर कर देगा।''

उनकी यह बात सुनकर बलराम युद्ध करने से ढीले पड़े। हमारे निषादराज श्रीकृष्ण के सम्मोहन में आ गये। इसीलिये युद्ध बन्द हो गया।

अरे ! श्रीकृष्ण राजा पौण्डु की ओर मुड़ गये। पौण्डु उन्हें सामने देखकर बोला- ''श्रीकृष्ण तुम्हें जो सत्य लगता है वह सत्य है और जो तुम्हें झूठ लगता है वह झूठ। तुम महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डवों को अपने अनुसार लड़ने के लिये विवश करते रहे। तुम्हें अब मुझसे आमने सामने युद्ध करना है।''

यह कहकर पौण्डु ने बाण चला दिया। सनसनाता बाण श्रीकृष्ण के चरणों के पास जाकर धरती में धंस गया।

अब श्रीकृष्ण ने उस पर बाणों से वर्शा शुरू कर दी।

दोनों में भीशण युद्ध हुआ। अन्त में क्रोधित श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र ने राजा पौण्डु की गर्दन काट दी। बड़ी देर तक युद्ध के मैदान में उसका धड़ युद्ध करता रहा। अन्त में वह भी लड़ते लड़ते धरती पर गिर पड़ा।

सेना ने इधर उधर भागना शुरू कर दिया। मैं टीले से उतर कर निषादराज के पास आ गया। निषादराज और महारानी वेणु अपने घायल वीरों को रथों में डालकर निषादपुरम लौट पड़े।

महारानी वेणु रथ में घायल निषादवीरों का उपचार करते हुये बोली, ''स्वामी आपने श्रीकृष्ण के कहने से युद्ध करना बन्द कर दिया। क्या आपके मन में बसे संसय का निवारण हुआ ?''

एकलव्य यह सुनकर गम्भीर होते हुये बोले- ''इस घटना से पूर्व मैं श्रीकृष्ण के अस्तित्व पर सन्देह कर रहा था। पौण्डु का कहना था कि वह ही सच्चा वासुदेव है। उसकी मृत्यु से मैं श्री कृष्ण के अस्तित्व से परिचित हो गया हूँ।''

यह सुनकर वेणु श्रीकृष्ण के अस्तित्व के सम्बन्ध में विचार करने हेतु गम्भीर हो गई।

यह कथा सुना कर पुष्पक अपनी पत्नी से बोला कि मैं धन्य होगा कि मैंने श्रीकृष्ण को अपने समीप से निकलते देखा ।

14

समय अपनी गति से प्रवाहमान रहता है। निषाद एकलव्य भील जातियों के कल्याण कार्य में व्यस्त रहने लगे। उनका पुत्र पारस अपने पिता की तरह धनुर्विद्या में प्रवीण हो गया। वह भी अपने पिता के अनुसार प्रतिभाशाली हैं। उसकी माताश्री वेणु उसे धनुर्विद्या के अभ्यास कराने में व्यस्त रहती थीं।

एक दिन एकलव्य ने अपने गुप्तचर पुष्पक से कहा, "पुष्पक हम अनुभव कर रहे हैं कि हम आयु के ढलान की ओर जाने लगे हैं किन्तु हमारी वह इच्छा सम्भव है कभी पूर्ण न हो पावे।"

"कौनसी इच्छा निषादराज ?"

"यही अर्जुन से दो दो हाथ करने की।"

"निषादराज की इस इच्छा की पूर्ति के निमित्त ही हम इस कार्य में लग जाते हैं।"

"गुप्तचर, आप ठीक सोचते हैं महारानी वेणु हमें इस बात के लिये हमेशा प्रेरित करती रहती हैं। अब तुम अर्जुन का पीछा करो उसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी हमें भेजते रहो। जिससे अवसर देखकर हम उसका सामना करने की इच्छा पूर्ण कर सकें।'

"निषादराज की आज्ञा शिरोधार्य है। अब मैं जाता हूँ। अर्जुन के सम्बन्ध में आपको सूचनायें मिलती रहेंगी।"

यह कहकर पुष्पक चला गया, निषादराज गुप्तचर पुष्पक के सन्देश की प्रतीक्षा में रहने लगे।

अनेक दिन बीत चुके थे ।

आज लम्बे समय बाद निषादराज एकलव्य के दरबार में सभासदों की सभा हो रही है। महारानी वेणु हर बार की तरह निषादपति एकलव्य की बांयी ओर सिंहासन पर विराजमान हैं। सभी सभासद आसन ग्रहण कर चुके हैं। आज वृद्ध मंत्री चक्रधर के युवा पुत्र शंखधर भी उपस्थित हैं। उसने भी एकलव्य के साथ शिक्षा ग्रहण की है। इन दिनों मंत्री चक्रधर उसे राजकाज की शिक्षा देने के लिये साथ रखने लगे हैं। धीरे धीरे वह अपने पिता की तरह राज्य के कार्यों में प्रवीण होता जा रहा है।

जब सभासद बैठ चुके, निषादराज एकलव्य ने लम्बे समय से उठ रहे प्रश्न को सभी के समक्ष रखा, ''सभासदों, हमको यह ज्ञात नहीं हो पा रहा कि इतिहास में हम छोटी जाति के कब और कैसे हो गयें ? यह प्रश्न मेरे अंतःकरण को लम्बे समय से झकझोरता रहा है। आज यही प्रश्न पुनः तीव्र वेग से उठ रहा है। जातियों के सृजन के सम्बन्ध में आपके विचार हम जानना चाहते हैं।''

यह प्रश्न सुनकर मंत्री चक्रधर का पुत्र शंखधर बोला, 'निषादराज आज्ञा हो तो मैं कुछ कहँू।'

'हाँ हाँ, निःसंकोच कहें।'

'निषादराज आपके प्रश्न को सुनकर मेरे हृदय में एक प्रश्न उठ रहा है।'

निषादराज ने पूछ लिया, 'कैसा प्रश्न ?'

'यही सतयुग अर्थात कृतयुग में सभी एक वर्ण के थे। महर्शि वेदव्यास, इन सभी बातों को स्वीकार कर चुके हैं।

मन्त्री चक्रधर अपने पुत्र के विवेकशील उत्तर के लिये उसका साहस बढ़ाते हुये बोले, 'पुत्र ष्शंखधर तुमने यह बात कहां से जानी, कि बेदव्यास यह बात स्वीकार कर चुके हे ?'

''मैने-महाभारत पुराण का गहराई से अध्ययन किया है।''

''यह कौन सा पुराण है ?'' चक्रधर बिस्मित थे ।

'' पिताश्री और महाराज सब सुनें , आप सबको ज्ञात नहीं होगा कि कौरव-पाण्डवों के युद्ध का वर्णन करने वाला एक ग्रंथ महर्षि बेद व्यास ने अभी अभी लिखा है । इसे वे '' जय '' के नाम से पुकारते थे, लेकिन समूचे भारतवर्ष के भाग लेने वाले इस युद्ध की विकरालता और विभीषका के कारण बेद व्यास का ग्रंथ जो भी पढ़ता है उसे महाभारत पुराण कहके संबोधित करता है । तबसे वहग्रंथ इसी नाम से ख्यात हो रहाहै ।'' शंखधर ने विनम्रता से कहा ।

'' वाह शंखधर, तुम तो अध्ययनशील ओर नीति वान बनने लगे हो ।'' महाराज निषादराज ने अपने मुंह से शंखधर की प्रशंसा की ।

अपनी प्रशंसा सुनकर आत्मविभोर होते हुये शंखधर ने कहना शुरू किया, '' बेद व्यास लिखते हैं कि सतयुग के समय एक वर्ण और जाति का ऐसा समाज था जिसमें किसी का कहीं शोशण, उत्पीड़न नहीं था। उस समय न कोई राजा था, न राज्य। न दण्ड था और न दण्ड देने वाला ही। सभी प्रजाजन धर्म से परस्पर अपनी रक्षा करते।..... किन्तु ...? किन्तु राजनीति ने उसमें प्रवेश किया। आम जन में आपस में युद्ध हुआ। जो युद्ध में विजयी हुआ वह स्वामी और जो युद्ध में पराजित हुये वे दास बन गये।'

'आपकी बात से मैं असहमत नहीं हँू वत्स शंखधर, किन्तु अर्थ ने भी अपने पंख फैलाये। इनमें जो समृद्ध गण थे वे और ऊँचे हो गये। असमृद्ध गण उनसे नीचे गिने जाने लगे। युद्ध में जो वीर मारे गये उनकी पत्नियाँ दासी के रूप में सामने लायी गयीं। उन्हें दासी धर्म के पालन की शिक्षा दी गई। धीरे धीरे स्वामी ने दास दासियों में भेद डालना शुरू कर दिया। जिससे वे एकजुट होकर सामना न करने लगें। उनमें भी चमड़ी के रंग के आधार पर भेद भाव की खाई पैदा की गई। सुन्दर दासियाँ उपहार की वस्तु बन गईं। द्रोपदी के विवाह में दुरपद ने यौवन पर चढ़तीं मंहगे वस्त्रों और आभूशणों से सुसज्जित सौ श्यामा दासिया दीं।'' मनोहर ने सहसा उपस्थित होकर शंखधर की बात को आगे बढ़ाया तो सबने चौंक कर वृद्ध मंत्री मनोहर को देखा ।

शंखधर सम्पूर्ण सभा पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था इसीलिये मनोहर की बात काटते हुये बोला, 'निषादराज, स्वामी वर्ग दो भागों में बंटा- ब्राह्मण एवं क्षत्रिय। दास वर्ग भी दो भागों में विभाजित हो गया- वैश्य और शूद्र वर्ग। जिनका शिल्प पर थोड़ा सा भी अधिकार था वे वैश्य के रूप में सामने आये। जो शिल्पहीन थे उन्हें सेवा करने का कार्य मिला। धीरे धीरे सेवा करने वालों से शिल्पी उच्च वर्ग में गिने जाने लगे।'

मनोहर ने सोचा- यह युवा शंखधर अपने आप को जाने क्या समझ रहा है ? अरे ! मैने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया है। यह सोचकर वह बोला, 'ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्म को छोटा मानने लगे। यहीं से समाज का पतन शुरू हो गया। कर्म करने वाले छोटे माने जाने लगे। वे शूद्र कहे गये।'

निषादराज एकलव्य ने इस समय अपने मन की बात कही, '' आप दोनों की बात के आधार पर मैं कहना चाहता हूं कि श्रम कार्यों का विकास तभी हो सकता है जब श्रम बुद्धि से जुड़े। श्रम बुद्धि से कटकर अन्धा है और वहीं श्रम से कटकर बुद्धि बहरी है। हमारे इस भरतखण्ड का यही तो दुर्भाग्य रहा है। यहां श्रम और बुद्धि को पृथक पृथक स्थान पर रखा गया है। इसी का परिणाम है कि हम छोटे गिने जा रहे हैं।हमारे श्रम ने बुद्धि और विवेक का साथ लिया है। इसी कारण हम किसी से पीछे नहीं हैं किन्तु जिन लोगों ने बुद्धि और श्रम का बंटवारा किया था, वे हमें परम्परा के कारण छोटे मान रहे हैं। जाने इन लोगों की कुण्ठित बुद्धि कब खुलेगी ?''

महारानी वेणु बोली, 'हमारे निषादराज के मन में जिस प्रश्न को लेकर कुण्ठा घर कर गई, आज उसका दूध का दूध और पानी का पानी हो गया है। किसी दूसरे के मानने न मानने से हम छोटे बड़े तो नहीं हो जाते।'

निषादपुरम के वयोवृद्ध जनसेवक मनोहर ने पुनः खड़े होते हुये कहा, ''आज हमारी सभा ने जो विचार विमर्श किया है, इन्हीं सब तथ्यों को महर्शि वेदव्यास ने अपने नवीन पुराण 'महाभारत' में अनेक स्थानों पर जातियों के उत्थान पतन के मुख्य बिन्दुओं को भी छूने का प्रयास किया है, क्यों कि मैंने भी उस ग्रंथ अध्ययन कर लिया है। इस समय याद आ रहा है महाभारत के शान्ति पर्व में भीश्म का कथन, जिसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि कृतयुग में नियम विरूद्ध आचरण करने वाले को लोकनिन्दा से नियंत्रित किया जाता था। लोकमत के द्वारा ही लोगों को सामाजिक कार्य और न्याय के रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी जाती थी। आप सभी को ज्ञात होना चाहिये कि कृतयुग में दास नहीं थे।''

उसकी यह बात सुनकर शंखधर बोला, 'महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार आरम्भ में सब लोग परस्पर एक दूसरे की धर्मपूर्वक रक्षा करने वाले थे। वह समाज संकट में उस समय पड़ा जब उसके सदस्यों में मोह घर कर गया। मोह के कारण सामाजिक नियम की भावना नश्ट हो गई। परस्पर अविश्वास से मोह के वश में होने के कारण सभी लोग लोभ के वशीभूत हो गये। जो उन्हें प्राप्त नहीं था उसका लालच और अनावश्यक चिन्तन करने के कारण उनमें काम नाम का दूसरा दोश पैदा हो गया। काम के वेग से राग का दोश आ गया है। इससे उनका विवेक नश्ट हो गया। इस स्थिति में लोग कार्य तथा अकार्य में भेद भूल गये। दोश और अदोश में भेद करना छोड़ दिया। इस तरह समाज गलत रास्ते पर चलने के कारण लोगों की सामूहिकता की भावना नश्ट हो गई। व्यक्ति व्यक्तिवाचक हो गया।

शंखधर की यह बात सुनकर सभी उसके ज्ञान की मुक्तकंठ से पशंसा करने लगे। उपस्थितजनों के अन्दर की भावना को निषादराज ने अनुभव करते हुये कहा, 'आश्चर्य है हमें अपने मन्त्री के पुत्र की बुद्धि पर। हमारे मन्त्री चक्रधर चाहें तो अपना दायित्व अपने पुत्र शंखधर को सौंपकर इस दायित्व से मुक्ति पा सकते हैं।'

आदेश पाकर मन्त्री चक्रधर बोले, 'निषादराज से मैं अपने मन की यह बात कहने की सोच ही रहा था।अब मैं इसी समय अपना यह दायित्व इस महासभा के समक्ष ही शंखधर को सौंपता हूँ। यह कहकर वृद्ध मन्त्री चक्रधर ने निषादराज के सिंहासन के समक्ष जाकर अपना धनुश बाण अपने पुत्र शंखधर के हाथों में सौंप दिया।'

यह देखकर निषादपुरम के वयोवृद्ध मनोहर ने खड़े होकर कहा, 'मैं इस अवसर पर सम्पूर्ण सभा की ओर से निषादराज का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। उन्होंने वृद्ध मंत्री को दायित्व से मुक्त करके उचित ही निर्णय लिया है। मैं अपने नये मंत्री शंखधर से आशा करता हूँ कि वे अपने पिताश्री के पद चिन्हों पर चलकर निषादपुरम की प्रगति के लिये प्रयास करते रहेंगे।'

इस निर्णय के बाद कुछ क्षणों तक सभा स्तब्ध बनी रही। वृद्ध मनोहर ने ही सभा का मौन तोड़ा, 'मैं प्रसंग पर ही पहुँच रहा हूँ। ''महाभारत पुराण'' के शान्तिपर्व के अनुसार लोगों को जैसे हिंसक जन्तुओं से भय होता है, ठीक वैसे ही उद्दण्ड लोगों से भी सदा भय बना रहता है। एक की संपत्ति को दो मिलकर छीन लेते हैं। दो से वह संपत्ति बहुत से छीन लेते हैं। स्वतंत्र नागरिक दास बना लिये जाते हैं। इसीलिये इन अपराधों को रोंकने के लिये राजा की सृश्टि की गई।'

शंखधर ने बात को और आगे बढ़ाया, 'राजा का सृजन यकायक नहीं हुआ पहले पहरेदार बना। बाद में पहरेदार रूपी सैनिक को दण्ड देने का अधिकर दे दिया गया। धीरे धीरे व्यवस्था बनाये रखने के लिये पहरेदार

दण्ड हाथ में लेने लगे। शिक्त संपन्न होने से वे राजा के रूप में प्रतिश्ठित हो गये। उनके चाटुकार उन्हें भगवान के प्रतिनिधि के रूप में देखने लगे।'

लम्बे समय से चल रही चर्चा में निषादराज के पुत्र पारस ने अपना मत सुनाया, 'सभासदों, धीरे धीरे जातियाँ प्रजातियाँ बनती बिगड़ती चली गईं। काका ने बताया कि ''महाभारत पुराण'' में समाज के विकास के उन तथ्यों को महर्शि वेदव्यास ने इसे स्वीकार किया है। उन्होंने देश और समाज को ऐसी कृति दी है जो युगों युगों तक समाज को सही दिशा देने में अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहेगी।

सभा में किसी ने खड़े होकर कहा, 'महाभारत पुराण' में वेदव्यास ने कहीं कोई भी बात गोपनीय नहीं रखी है। हम वेदव्यास जी के इस पुराण के लिये हृदय से आभारी हैं।'

वर्योवृद्ध मनोहर खड़े होते हुये बोला, ' किन्तु.....?'

सभासदों में से किसी के शब्द सुनाई पडे, 'किन्तु क्या ..... ?'

यही वेदव्यास ने हमारे निषादराज एकलव्य के अंगुश्ठदान की बात तो ग्रन्थ में स्वीकारी है किन्तु उसके पश्चात् यह पता नहीं चलता कि इतने तीक्ष्ण प्रहारक धनुर्धर का इस पुराण में कहां लोप हो गया ? क्या वेदव्यास जैसा व्यक्तित्व इस पुराण में निषादराज के व्यक्तिव्व को भूल गया होगा?'

सभा में से एक और व्यक्ति ने खड़े होते हुये बोला, ''भैया वे भूले नहीं है। सुना है वे श्री हरिवंश नाम के एक नये पुराण की संरचना कर रहे हैं। उसमें इनका उल्लेख है। रही इस पुराण की बात, सम्भव है वे भी आचार्य द्रोण की तरह किसी मोह में बंध गये हों। हमें तो लगता है इसी कारण वे इस पुराण की रचना करते समय हमारे निषादराज के व्यक्तित्व को भूल गये।'

यह सुनकर निषादराज एकलव्य ने अपना निर्णय सुनाया, 'गुणदोश तो प्रत्येक विशय में है। संसार में कोई चाहे कितना ही श्रेष्ठग्रंथ लिख ले, दोश ढूँढने पर तो उसमें भी मिल जायेंगे। जहां हमें श्रेष्ठबातें मिलें, उन्हें स्वीकार लें। निम्न बातों को छोड़ दें। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हम सब भी उन्हीं लोगांे में गिने जायेंगे। हमारी जाति इस अस्वाभाविक जातियों के बंटवारे के दायित्व को अस्वीकार करती है।'

इसी समय सभी का ध्यान प्रवेश द्वार की ओर चला गया। कुछ लोग जोर जोर से बातें करते हुये निषादराज के सिंहासन की ओर बढ़ते आ रहे थे। अब पूरा जत्था उनके समक्ष आकर खड़ा हो गया था। उनके साथ आया वृद्ध बोला, 'निषादराज, हमारे जाति कुटुम्ब की घोंटुल परम्परा को इस मिट्ठू नामक युवक ने तोड़ा है।'

महारानी वेणु ने पूछा, ' कहो, कैसे ...?'

मिट्ठू ने घोंटुल में मेरी पुत्र की पुत्री बांसो के साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया है। मेरी पौत्री मिट्ठू से विवाह नहीं करना चाहती।'

निषादराज ने अपना निर्णय सुनाया, 'धर्म के अनुसार घोंटुल की मर्यादा बनाये रखना सभी का दायित्व है। मिट्ठू के पिताश्री और माताश्री ने उसे घोंटुल में भेजने से पूर्व क्या उसकी परम्परा का उसे ज्ञान नहीं दिया।''

मिट्ठू के पिता ने निवेदन भरे स्वर में कहा, 'अपराध क्षमा हो निषादराज। हमने घोंटुल की मर्यादाओं के संबंध में इसे ज्ञान तो दिया था किन्तु ...।'

'किन्तु क्या ...?'

''हमें तो लगता है यह अन्य जातियों के युवकों के प्रभाव में उच्छृंखल हो गया।''

''युवक, तुम्हें इसका दण्ड मिलेगा। घोंटुल हमारी सांस्कृतिक विरासत के रखवाले हैं।'यह कहते हुये निषादराज ने जत्थे के साथ आये वृद्ध की ओर देखते हुये पूछा, 'आपके कुटुम्ब में इसका क्या दण्ड निश्चित है ?'

'निषादराज, हमारे कुटुम्ब में अन्य कुटुम्बों की तरह अपराधी को समाज से पृथक कर दिया जाता है।किन्तु ऐसे प्रतिभावान युवक को यह दण्ड देना हमें उचित नहीं लग रहा है। इसीलिये हम आपके पास न्याय के लिये उपस्थित हुये हैं।'

मिट्ठू ने आत्म निवेदन किया, 'निषादराज, मुझसे यह अपराध हो गया है। आप मुझे जो भी दण्ड देंगे, सहर्श स्वीकार है।'

यह अपना दोश स्वीकार कर रहा है यह सोचकर निषादराज बांसो के चेहरे की ओर देखने लगे। बांस की तरह लंबी बांसो चुपचाप सिर झुकाये खड़ी थी।

निषादराज ने आदेश दिया, 'मिट्ठू को उस समय तक इन्द्रन नदी में तैरते रहना पड़ेगा जब तक बांसो उसे क्षमा न कर दे।'

यह सुनकर मिट्ठू ने निषादराज के आदेश को शिरोधार्य करते हुये कहा, 'निषादराज की जैसी आज्ञा।'

अब निषादराज ने अपने नये मंत्री शंखधर की ओर देखते हुये कहा, 'ठीक है, ये मंत्री शंखधर की देखरेख में तैरना शुरू करे।'

मंत्री शंखधर मिट्ठू को लेकर इन्द्रन के घाट पर पहुंच गया। उसने तैरना शुरू कर दिया था। दिन अस्त होने को हो गया। वह पूरी तरह थक चुका। बांसो इन्द्रन के घाट पर उसे तैरता हुआ देखने के लिये पहुंच गई। उसने देखा, वह किसी भी क्षण डूब सकता है इसीलिये वह जोर से चिल्लाकर बोली, 'मिट्ठू, मैंने तुम्हंे क्षमा किया, तुम जल से बाहर निकल आओ।'

उत्तर में कठिनता से मिटठू ने कहा, 'बांसो, मैं तुम्हारे बिना जल में से बाहर निकलकर क्या करूंगा ? यदि तुम मुझसे विवाह करोगी तो ही मैं जल से बाहर निकलूंगा।'

कुछ क्षणों तक बांसो सोचती रही, उसे लगा कि वह जिद्दी स्वभाव का है। यह तो मेरे बिना जीवित ही नहीं रहना चाहता। इसी समय उसने देखा वह डूबने ही वाला है। वह चिल्ला पड़ी, 'अच्छा मिट्ठू, तुम बाहर निकल आओ। मैं तुमसे विवाह करने के लिये तैयार हूं।'

यह सुनकर वह कठिनता से तैरते हुये किनारे पर आ गया। बांसो ने हाथ पकड़कर उसे जल से बाहर निकाला। वह निढ़ाल धरती पर पड़ा रहा। बांसो उसके तलबों को मलने लगी।

मंत्री शंखधर वहां उपस्थित थे ही। वे भी उन दोनांे के पास आ गये। मंत्री को पास आया हुआ देखकर वह बांसो की सहायता से खड़ा हो गया। यह देखकर शंखधर बोला, 'देख मिट्ठू, बांसो बहुत अच्छी लड़की है। इसके हृदय में दया धर्म है।'

मंत्री जी, मैं बांसो के इस स्वभाव को घोंटुलवास में हीं समझ गया था।'

'और तुमने इसके इस स्वभाव का लाभ उठाया है।'

'यह बात नहीं है मंत्री जी। यदि बांसो अब भी मुझसे विवाह नहीं करना चाहती तो मैं अब इसकी तरफ मुडकर देखूँगा भी नहीं।'

यह सुनकर मंत्री शंखधर बांसो के मुख की तरफ देखने लगा। बांसो समझ गई, मंत्री जी मेरा अभिमत चाहते हैं। यह सोचकर वह बोली, 'मंत्री जी मैने इसे अपनी स्वीकृति विवाह करने के लिये प्रदान कर दी है। मैं अपने वचन से मुकर नहीं सकती।'

यह सुनकर मंत्री शंखधर ने अपना आदेश सुनाया, 'मिटठू और बांसो का मिलन मंगलमय हो। मैं इसकी सूचना निषादराज को दे दँूगा।'

यह कहते हुये मंत्री शंखधर उन्हे घाट पर ही छोड़कर चले आये।

15

महारानी वेणु जीवन भर से धनुर्विद्या के सतत् अभ्यास में लगी रही थीं और अब भी वे उसी तन्मयता से अपना दैनिक नियम पूरा करती थीं।

एक दिन उनके पुत्र युवराज पारस ने पूछ लिया, "माताश्री, अभ्यास से कभी आपका मन नहीं भरा ?आप तो इस विद्या में बहुत आगे निकल गई है ।"

"नहीं वत्स, मैं तो इस विद्या की साधारण छात्रा हूं और छात्र-छात्राओं के लिए अभ्यास जीवन का क्रम कहलाता है। हां मैंने यह तय किया है कि जिस दिन मैं अपने सपनों को तुम्हारे माध्यम से साकार कर सकूँगी, उसी दिन मेरे अभ्यास को इससे विराम मिल सकेगा।"

"माताश्री मुझसे आपने कौनसा सपना साकार नहीं किया है। आपने मुझे, किसी भी व्यक्ति को धनुष बाणों की सहायता से कैद करना सिखा दिया है। यह तो संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कहलाने वाला महाबली अर्जुन भी नहीं कर पाता होगा।"

'वत्स, उस अर्जुन का नाम क्यों लेते हो ? तुम्हें अपनी तुलना करना है तो अपने पिता श्री से करके देखो। तुम अभी भी उनके समान धनुर्धर नहीं बन सके हो। मैं तो तुम्हें उस दिन मान जाऊँगी जिस दिन तुम अर्जुन को धनुर्विद्या के पराक्रम से कैद करके अपने पिताश्री के समक्ष उपस्थित कर दोगे।"

"माताश्री मैं इसी प्रयास में लगा हूँ। हमारे कुशल गुप्तचर ने समाचार दिया है कि अर्जुन इन दिनों द्वारिकापुरी के लिये गये हैं।"

"वहां किस लिये वत्स ?"

"कारण तो अभी ज्ञात नहीं हो सका। वैसे भी वे श्री कृष्ण से मिलने के लिये प्रायः द्वारिकापुरी जाते आते रहते हैं। अब तो मैंने सोच लिया है.....।"

कक्ष में प्रवेश करते समय निषादराज एकलव्य ने उनकी बात सुन ली थी। इसीलिये प्रश्न कर दिया, "क्या सोच लिया है वत्स ?"

"जब भी अर्जुन द्वारिकापुरी से वापस आयें। रास्ते में उन्हें कहीं भी कैद करने की योजना है।"

यह सुनकर निषादराज एकलव्य ने उसे समझाना चाहा, "वत्स हम उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए, हां एक बार उन्हें अपना बोध करा देना होगां। जिसमें उन्हें यह ज्ञात हो सके कि उनके अतिरिक्त भी इस धरती पर कोई और भी धनुर्धर और गदाधर है।"

यह सुनकर महारानी वेणु ने प्रश्न किया ''वे किस पथ से हस्तिनापुर से वापस आते हैं ?"

"माता श्री, हमारे गुप्तचर का कहना है कि वे हमेशा ही पंचनद अर्थात पांचाल होते हुये लौटते हैं। मैं सोचता हूँ वहां ही उन्हें कैद करके आप लोगों के समक्ष उपस्थित कर दूँ। पिताश्री आप तो पंचनद पहुँचने की तैयारी में लगे हैं। पिताश्री की आज्ञा हो तो मैं भी साथ चलूँ।

इसी समय महारानी वेणु बोलीं, "निषादराज से मैं भी साथ चलने की आज्ञा चाहती हूँ।"

निषादराज एकलव्य ने कहा, "मैं मां बेटे के मन्तव्य से परिचित हो गया हूँ। आप लोगों की यही इच्छा है तो पंचनद (पांचाल) चलने की तैयारी की जाये।"

निषादराज की आज्ञा पाकर सभी पंचनद के लिये तैयारी में जुट गये।

पंचनद क्षेत्र में आमीर जाति के भील लोग निवास करते हैं। वे सभी धनुर्विद्या में निपुण हैं। निषादराज एकलव्य का पुत्र पारस वहां पहले ही पहुँच गया। उसने वहां पहुँचकर वहां के लोगों को अर्जुन पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया।

निषादराज एकलव्य भी महारानी वेणु के साथ पंचनद में पहुँच गये और अर्जुन के पांचाल आ पहुंचने वाली तिथि पूर्णिमा की प्रतिक्षा करने लगे।

अंततः पूर्णिमा दिन आया ।

सूर्य ढलने का समय हो आया था।

द्वारिकापुरी से लौटते अर्जुन को पंचनद के सुन्दर सरोवर की झांकी ,दिखाई पड़ी तो वे वहां की प्राकृतिक सुंदरता पर मुग्ध हो उठे। वैसे भी उनका सार्थ बहुत बड़ा था जिसमें द्वारिकापुरी से आई हजारों स्त्रियां सम्मिलित थीं, समूह में अधिकांश विधवायें थीं, कुछ गर्भवती और अनेक वृद्धाऐं । कुछ बालक और वृद्ध व्यक्ति भी उनके साथ थे। उन्हे लगा- इतने बड़े समूह के साथ किसी उम्दा बड़े प्रांगण और जल के साधन वाले स्थान पर रात्रि व्यतीत करना उचित होगा।

उनने अपने सैनिकों को संकेत दिया कि आज रात्रि यहीं विश्राम होगा।

बात की बात में सेवकों ने अस्थाई पड़ाव तैयार कर दिया और यहां से वहां तक अनगिनं छोटे छोटे तम्बू तन गए । जिनमें वे सभी ठहरने लगे। आसपास के फलदार वृक्षों से तोड़े गये फल और अपने पास उपलब्ध पाथेय सेवकों ने उन्हे परोसे तो सब अल्पाहार करने लगे। अर्जुन भी एक ऊँचे से टीले पर बैठ गये। वहां से उन्हे अपने समूह के कार्यकलाप दिखाई दे रहे थे।

रात्रि विश्राम की व्यवस्था ओर निश्चिन्तता से मुक्ति पाई तो अर्जुन स्मृति में डूब गये, “श्री कृष्ण ने संभवतः भविष्य भांप लिया होगा तभी तो यदुवंश की स्त्रियों की रक्षा के लिये दारूक को मुझे बुलाने के लिये भेज दिया था। उसके पश्चात् सुना है कि वे अपने पिता श्री वासुदेव जी से कहने लगे कि तात, आप अर्जुन के आने की प्रतिक्षा करते रहें। इस समय बलराम जी वन में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं उनसे मिलने के लिये जाऊँगा।इस तरह सम्पूर्ण बातें समझाकर श्री कृष्ण वसुदेव जी की चरण वन्दना करके वन में चले गये और वहाँ वे अपने दांये पैर को बांये पैर पर तिरछा रख के बैठ गये । कहते हैं कि उनके पांव के पंजे को हरिण की आंख समझ कर दूर बैठे एक भील का बाण लगने से उन्होंने अपनी देह का अवसान कर दिया। उधर समुद्र ने द्वारका नगरी को डुबाना आरंभ कर दिया था ।

समाचार पाकर मैं बेहाल हो गया। द्वारिकापुरी पहुँचकर वसुदेव जी से मिला। मुझे देखकर वसुदेव जी बोले, “हे अर्जुन, यहां सारे यादव वीर आपस में लड़-भिड़ कर समाप्त हो गए हैं। द्वारका नगरी में असंख्य विधवायें विलख रही हैं । मेरा एक सुझाव है पुत्र कि जिन स्त्रियों का प्रसव समीप है। उनके प्रसव एवं प्रसवोपरांत उत्पन्न बालकों के लालन-पालन एवं उनकी रक्षा का भार श्री कृष्ण तुम्हें सौंप कर गये हैं। यह राज्य, ये स्त्रियाँ, ये रत्न सब तुम्हारे आधीन हैं।”

ऐसा कहकर वे भी अपने प्राणों का परित्याग कर गये।

मैंने उसी समय सोच लिया, “मैं वृष्णिवंश की स्त्रियों, बालकों और बूढ़ों को अपने साथ इन्द्रप्रस्थ ले जाउंगा क्यों कि यह समुद्र अब इस सारे नगर को डुबो देगा। इसीलिये मैंने समस्त स्त्रीयों से कह दिया कि तुम सभी अपने तरह तरह के वाहन और रत्न इत्यादि लेकर यहां से निकलने की तैयार करो। आज से सातवें दिन नगर को छोड़कर जाना ही होगा।’

इसके पश्चात मैंने वसुदेव जी का अन्तिम संस्कार किया। निश्चित दिवस पर मैं अपने साथ वहां की उन अनाथ स्त्रियों, छोटे बालकों एवं वृद्धों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के लिये चल पड़ा।

रास्ते भर श्रीकृष्ण के सान्निध्य के क्षण बारम्बार स्मृति में आते रहे। हर बार सोचतारहा हूं कि उनकी कृपा से मैं कहां से कहां पहुँच गया। आज उनके इस धरा से जाते ही मैं व्यथित हूँ। उनके बिना यह सारा संसार सूना दिखाई दे रहा है। कोई क्षण ऐसा नहीं जा रहा है जब वे दूर होते हुये भी दूर हों। मुझे यह आभास हो रहा है कि वे हर पल हमारे पास हैं।

इस तरह जाने क्या क्या सोचते हुये बिना श्रम अनुभव करे मैं इतने लम्बे रास्ते को पार कर आया हूँ।

000

रणक्षेत्र में श्रीकृष्ण के विराट पुरूष का दर्शन करने वाला अर्जुन ऐसे विचार मग्न था। उधर कर्मठ विराट पुरूष निषादराज की पंचनद क्षेत्र के ग्राम प्रधान के घर बैठक जमी थी। महारानी वेणु अपने अस्त्रों को संभाल

रही थीं। युवराज पारस उनके कार्य में सहयोग कर रहा था। नये मन्त्री शंखधर भी वहीं अपने अस्त्रों को सम्हालने में लगे थे। महारानी वेणु एक ही बात कहे चलीं जा रहीं थी, "मैंने जीवन भर धनुर्विद्या का अभ्यास किस लिये किया है ? एक बार निषादराज को मुझे अपने आपको परखने के लिये अवसर प्रदान करना चाहिये।"

निषादराज एकलव्य उन्हें समझाने का प्रयास कर रहे थे, "महारानी अर्जुन मेरा प्रतिद्वन्द्वी है। मैं चाहता हूँ एक बार अर्जुन से मैं स्वयं युद्ध कर सकूँ।"

"निषादराज, यह क्यों भूल रहे हैं, आपने सर्वश्रेष्ठगदाधर बलराम से भी घनघोर युद्ध किया है। आपके समक्ष बेचारा अर्जुन कहाँ ऽऽऽ ? यदि मैं अर्जुन से युद्ध करना चाहती हूँ तो भी आप ही उससे युद्ध कर रहे हैं।"

मन्त्री शंखधर ने प्रश्न किया, "महारानी, अर्जुन किसी स्त्री से युद्ध करेगा ?"

निषादराज ने एक स्पष्टीकरण दिया, "वह केवल क्षत्रियों से ही युद्ध करता है। सूतपुत्र कर्ण को भी वह युद्ध के लिये जीवन भर नकारता रहा है।"

"मुझे यह ज्ञात है। मैं एक सैनिक के वेष में उससे युद्ध करूँगी।"

यह सुनकर युवराज पारस ने कहा, "आप जीवन भर मुझे धनुर्विद्या का अभ्यास कराने में लगीं रहीं। मैं चाहता हूँ माताश्री कि मैं उसे पिता श्री के समक्ष बन्दी बनाकर ला सकूँ।"

"नहीं वत्स, तुम नहीं मैं ही भारत वर्ष की शक्ति साधना की परम्परा के अनुसार सामने आना चाहती हूँ जिससे ज्ञात हो कि इस देश की नारियां अपने को युद्ध के मैदान में पीछे नहीं रखतीं। मैंने जीवन भर धनुर्विद्या का अभ्यास किसलिये किया है। निषादराज ऽ ऽ ऽ एक बार मुझे अवसर अवश्य ही मिलना चाहिये। अन्यथा आपने इस धनुर्धर पत्नी से विवाह ही क्यों किया, किसी चूल्हा फूंकने वाली से ब्याह करक लाते।"

"महारानी से विवाह करना मेरा सौभाग्य रहा है। आज वत्स पारस की जो शिक्षा हुई है उसके मूल्य का अंकन तो कम नहीं किया जा सकता। वह सब आपकी ही देन है।"

"यह ठीक है निषादराज किन्तु अभ्यास में तीव्रता निरूद्देश्य तो नहीं आ सकती। मैं जीवन भर सोचती रही हूँ मेरा अभ्यास एक न एक दिन अवश्य ही किसी काम आयेगा। मैंने इसीलिये द्रोपदी स्वयंवर में आप से, अपने जाने की इच्छा व्यक्त की थी।"

यह सुनकर तो निषादराज एकलव्य को लगा- इन्हें अर्जुन से युद्ध करने ही दूँ। मैं अपनी इच्छा की पूर्ति, बलराम से गदायुद्ध करके पूर्ण कर चुका हूँ। इनके पीछे मैं रहूँगा ही। यह सोचकर बोला, "जैसी महारानी की इच्छा हो वैसा करें।"

महारानी वेणु की उमंग आसमान को छू गई। वे अपने पुत्र को आदेश देते हुये बोलीं, "वत्स पारस, तुम मेरे साथ रहोगे। शीघ्र तैयारी करें। हम चाहते हैं सूर्य अस्त होने से पूर्व आज ही अर्जुन से निवृत हो लें।"

यह कहकर वे सैनिक के वेष में अपने को सुसज्जित करने अलग कक्ष में चली गईं।

कुछ ही क्षणों में वे निषादराज के समक्ष उपस्थित थीं। उन्होंने अभी तक उसे वनफूलों से सुसज्जित तो देखा था आज वे उसे सैनिक के वेश में देख कर बोले, "आपने अपने को आवरण में ढंकने का पूरा प्रयास किया है फिर भी महारानी की लावण्यमयी प्रतिभा बाहर निकली पड़ रही है। देखना महारानी अर्जुन तुम्हारे इस रूप पर ही .....।"

"निषादराज, इन बातों को रहने दें। आप तो मुझे अर्जुन से युद्ध करने के लिये आज्ञा प्रदान करें।"

"आज्ञा है देवी, नहीं नहीं महारानी, अरे नहीं महारानी भी क्यों, निषादराज की प्रतिरूप। मैं भी आपके पीछे आ रहा हूँ।"

महारानी वेणु वत्स पारस और मन्त्री शंखधर को साथ लेकर उस सरोवर के लिये निकल पड़ीं, जहां अर्जुन ठहरा हुआ था। महारानी ने अपने भील सैनिकों को आदेश दिया, ''इस सरोवर को चारों ओर से घेर लो।''

कुछ ही क्षणों में अर्जुन के दल कको चारों ओर से घेर लिया गया।

अर्जुन को इस अवसर पर किसी भी प्रकार के युद्ध की आशंका नहीं थी। वह चिन्तन में खोया था, वह चौंका "ये भील सैनिक कहां से आ गये। ये इतना भी नहीं जानते यहां संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, महाभारत के युद्ध का विजेता अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष के साथ उपस्थित है।"

इसी समय उसे आवाज सुनाई पड़ी, "अर्जुन गाण्डीव उठाओ, नहीं तो कहोगे कि निहत्थे पर वार कर दिया।"

प्रति उत्तर में अर्जुन की ललकार सुन पड़ी, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो ?"

"युद्ध।"

"महाभारत के विजेता अर्जुन से युद्ध।"

"हां, अर्जुन से युद्ध।"

यह सुनकर अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया। उस पर बाण चढ़ाने लगा कि एकाएक तीव्र बाणों की बौछार से उसका गाण्डीव धरती पर गिर पड़ा। यह देखकर अर्जुन को क्रोध आ गया उसने गाण्डीव को फिर से उठाना चाहा।

तीव्र बाणों की वर्षा के कारण वह गाण्डीव नहीं उठा सका।

यह दृश्य देखकर अर्जुन के साथ द्वारिकापुरी से आयी स्त्रियाँ भयभीत होकर चिल्लाने लगीं, ''हे अर्जुन! हमारी रक्षा करो। क्या इसी बल पर हमें अपने साथ लेकर आये थे ?

कुछ स्त्रीया अपने आसपास भीलों को देखकर इधर उधर भागने लगीं। कुछ अपने अबोध शिशुओं को अपने सीने से भींच कर छिपाने का प्रयास कर रहीं थीं। कुछ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये झाड़ियों में छुाने का प्रयास कर रहीं थीं।

जब यह स्थिति एकलव्य ने देखी तो उन्होंने अपने सैनिकों को ललकारा, ''भील सैनिकों सुनोऽऽऽ, भील जाति की मर्यादा का उल्लङ्घन न होने पाये।''

अर्जुन दांत भीचते हुये सोचने लगा, "आज मुझे ये क्या हो गया ? गाण्डीव भी नहीं उठा पा रहा हूँ। इन असहाय चीत्कार करतीं स्त्रियों की रक्षा कैसे करूँ ?"

यह सोचकर अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया और तत्परता से उस पर बाण चढ़ाने लगा। महारानी वेणु ने गाण्डीव पुनः धरती पर गिरा दिया। अर्जुन ने जीवन में पहली बार विवश होकर कहा, 'सैनिक तुम कौन हो और क्या चाहते हो ?'

प्रश्न का उत्तर एकलव्य ने दिया, ''अर्जुन मै एकलव्य तुम्हें यह बोध करा देना चाहता हूँ कि पहाड़ पर पैर नहीं बल्कि दृढ़ निश्चय चढ़ा करते हैं।''

यह कहावत सुनकर अर्जुन सब कुछ साफ समझ गये इसके मुंह से शब्द निकले, ''निषादराज आप यहां ? महाबलशाली बलराम जी से गदायुद्ध करके तुमने अपने अस्तित्व का हमें बोध करा दिया है। किन्तु तुमने महाभारत के युद्ध में भाग नहीं लिया।''

''अर्जुन, मैंने महाभारत के युद्ध में जानवूझ कर भाग नहीं लिया। मैं नहीं चाहता था कि सम्पूर्ण भारतवर्श के राजा, महाराजाओं में यह युद्ध फैल जाये। कदाचित यदि युद्ध भी हो तो कौरव और पाण्डव तक ही सीमित रहे। ...और फिर उधर आप लोग यह सोचते रहे कि अगुश्ठ के कटने पर एकलव्य जैसों का क्या अस्तित्व।''

''आज मैंने निषादराज के अस्तित्व को स्वीकार किया है। मेरा भ्रम दूर हो गया कि वीरता और लक्ष्यबेधन का सम्बन्ध मानव अंगों से नहीं, मानव के दृढ़ निश्चय में है।''

दोनों की सहज बातें सुनकर महारानी वेणु ने अपना सैन्य वेष त्यागा और अपनी मूल वेषभूशा में उपस्थित हो गई। युवराज पारस एवं मन्त्री शंखधर उनके साथ थे।

एकलव्य महारानी को सम्बोधित कर बोला, ''महारानी हमारे भीलों को देखकर अर्जुन के साथ आयीं स्त्रियाँ भयभीत होकर भागने का प्रयास कर रहीं थीं।''

''स्वामी हम भीलों को देखकर कोई अपने आप ही भयभीत हो जाये इसमें हम भीलों का क्या दोष ?''

''किन्तु तुम्हारा सरोवर को ओर से घेरने का आदेश।''

यह सुनकर महारानी ने संकोचग्रस्त होकर अपना शीशश् झुका लिया और बोली,ं ''क्षमा करें, हमारा लक्ष्य किसी को घेरकर लूटना नहीं था । मैं तो महारथी अर्जुन को दिखा देना चाहती थी कि हे अर्जुन तुम तो साथ लायीं स्त्रियों की ही रक्षा नहीं कर पा रहे हो। तुम युद्धक्षेत्र में महावीर निषादराज एकलव्य तो क्या उनकी अर्द्धांगिर्नी महारानी की भी बराबरी नहीं कर सकते।''

महारानी वेणु की बात सुनकर अर्जुन बोला, "निषादराज ,याद आया कि मैंने महारानी वेणु का धनुर्विद्या में बड़ा नाम सुना है। आज उनके दर्शन करने का अवसर आया है।"

यह सुनकर निषादराज एकलव्य को विनोद सूझा। बोले, "अर्जुन अपने भाग्य की प्रशंसा करो, ये तो द्रोपदी के स्वयंवर में लक्ष्यबेधन के लिए भी जाने वाली थी।"

"तो क्या देवी आप द्रोपदी से विवाह करना चाहतीं थीं ?"

"नहीं ऽऽऽ मैं यह नहीं चाहती थी कि तुम्हारा विवाह द्रोपदी के साथ हो इसलिये मैंने उस स्वयंवर में निषादराज को भेजा था।"

"तो क्या निषादराज द्रोपदी के स्वयंवर में गये थे ?"

"हां अर्जुन मैं वहां था।"

"तो तुमने राजाओं के पक्ष में युद्ध क्यों नहीं किया ?"

" तुम उस दिन एक ब्राह्मण वेषधारी युवक के रूप में सामने आये। मैं तुम्हें पहिचान नहीं पाया, और फिर मैं दुर्योधन का साथ देकर उसके अहम् को और अधिक क्यों पोशित करता।'

"तो निषादराज, क्या आप उस दिन हमारी मदद करते।"

"अर्जुन, तुमने लक्ष्यबेधन कर विश्व में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का अपना ध्वज फहरा दिया था। मैं समझ गया था वहां तुम्हें किसी की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि वैसे भी मुझे बाद में ज्ञात हो चुका था कि ब्राहमण रूप धारी तुम अर्जुन थे।"

"निषादराज यदि ठीक वक्त पर आपको ज्ञात हो जाता कि मैं अर्जुन हूँ तो.... ?"

"तो अर्जुन आज की तरह निश्चय ही कुछ सोचता।'

'अर्जुन एक बात और कहने से छूट रही है।'

'कौन सी बात ?'

'यही, तुमने अश्वमेघ यज्ञ का अश्व दिग्विजय के लिये छोड़ा था।'

'हाँ, याद आया एकलव्य, उस समय भी तुम हमारा अश्व कैद कर अपने पराक्रम से हमें परिचित करा सकते थे।'

अर्जुन, तुम बहुत ही भाग्यशाली हो। उस दिन भी हम तुमसे युद्ध करने के लिये तैयार थे। किन्तु तुम्हारा वह अश्व हमारे राज्य की सीमाओं को स्वतः ही छोड़ गया था।'

'अरे !'

'हाँ अर्जुन, किन्तु आज हमें आश्चर्य हो रहा है, तुम्हारे साथ में हजारों स्त्रियां कहां से और कैसे ?"

अर्जुन समझ गया, इसे अभी श्रीकृष्ण के वंश के अवसान के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। यदि इसे इस बात का ज्ञान हो जाता तो ऐसा वीर ऐसे संकट के समय सांझ ढले अपनी शक्ति का बोध कराने न आता।

यह सोचकर अर्जुन ही बोला, "वासुदेव श्री कृष्ण इस धराधाम में चले गये हैं।"

“यह क्या कहते हो अर्जुन ? श्रीकृष्ण !”

“हां निषादराज, श्रीकृष्णऽ।”

...फिर अर्जुन ने सारा प्रसंग कह सुनाया ।

महारानी वेणु यह प्रसंग सुनकर बोली, “क्षमा करें, हमें यह ज्ञात नहीं था कि द्वारिकाधीश श्रीकृष्णऽ ..... ! लेकिन उनके वीर योद्धा लोग कैसे ओर कहां मिट गये ?”

“हां महारानी वेणु वह प्रसंग भी सुन लें । दरअसल यदुवंशी अपनी शक्ति में इतने मदमस्त हो गये थे कि उन्होंने एक ऋषि का अपमान कर दिया।”

सभी के मुंह से शब्द निकले, ’कैंसे ?”

“यदुवंशी उस दिन अपनी सत्ता में मदांध से होकर हंसी में ही एक आदमी के पेट से कपड़े में लिपटा मूसल बांधकर गर्भवती स्त्री के रूप में ऋषि के समक्ष ले गये और ऋषिवर से पूछने लगे कि इसके प्रसव में क्या होगा ?”

युवराज पारस के मुंह से उत्सुक्तावश निकला, “फिर क्या ऽ ऽ ऽ ऽ ?”

“फिर क्या..... ? वे ऋषि उस नाटक को देखकर क्षण भर में सब कुछ जान गये और क्रोध मे भरकेै बोले, कि जाओ इसके पेट से मूसल पैदा होगा जो यदुवंशियों के विनाश का कारण बनेगा।’’

उसके पेट में मूसल ही था। ऋषि का शाप सुनकर सभी यदुवंशी भयभीत हो गये।

किसी ने परामर्श दिया कि इस मूसल का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया जाये तो सब लोग उस मूसल को मिटा देने के उपाय सोचने लगे।

सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया, कि इस मूसल को घिस घिस कर पानी समुद्र में बहा दिया जावे।

निर्णय के अनुसार मूसल घिस घिस कर समुद्र में पानी बहा दिया, जो नोंक शेष बच गई उसे भी समुद्र में फेंक दिया।

एकलव्य ने कहा ‘‘ फिर तो झंझट ही मिट गया न !”

“कहां ? मूसल के घिसाव कैे असर से पानी जहां जहां से निकला,वहां की घास में नोंकें उग आई। वे बरछी कटार की तरह घारदार हो गइ। मूसल घिस डालने की ष्खुशी में समस्त युदवंशी उसी घास में से निकल रहे थे कि फिसलने लगे , और उस नोंकदार घास से आहत हो कर प्राण त्याग गये । कहते हैैं कि मूसल की जो नोंक समुद्र में फेंक दी गई थी, उस नोंक को एक मछली निगल गई।

बाद में किसी मछुआरे ने जाल फैलाया। मछली फंसी, और काटी गई तो उसके पेट से वह नोंक मछुआरे के हाथ में पड़ गई। मछुआरे को वह नोंक पसंद आई तो उसने वही नोंक अपने बाण में फलक बनकर लगा दिया, जो अंततः भगवान श्रीकृश्णा के अवसान का कारण बनी।

यह कहकर अर्जुन चुप रह गया।

कितनी ही देर तक सब चुपचाप मौन साधे वहीं खड़े रहे। तत्पश्चात् एकलव्य और उनके परिजन शनैः शनैः अपने गन्तव्य की ओर लौट पड़े।

जिन्हे लुटेरा समझा गया था वे भील स्वयं लुटे से दिखने लगे थे और वे सब स्वतः अर्जुन व उसके दल के लोगों के आतिथ्य की व्यवस्थाऐं कर रहे थे ।

रात अपने अंधकार में बहुत कुछ छिपा रही थी और बहुत कुछ बदल भी रही थी ।

राम गोपाल भावुक कमलेश्वर कॉलोनी(डबरा)

भवभूतिनगर जिला गवालियर म0प्र0

पिन 475110

दूरभाष: 07524-225027

.....ऐसे मिला एकलव्य

हमारे देश के अधिकांश लोग भील बालक एकलव्य के बारे में केवल अंगुश्ठदान के प्रसंग से ही परिचित हैं। उसके सम्बन्ध में और अधिक जानने के लिये हम सभी उत्सुक रहते हैं। इसी प्रेरणा से, एकलव्य के बारे में शोध करना मेरे चिन्तन में समाहित हो गया।

.....मैंने एकलव्य को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महाभारत एवं उसके एक अंश कहे जाने वाले हरिवंश पुराण के प्रसंगों में खोजने का प्रयास किया है। लोक कथा एवं जनश्रुतियों के अतिरिक्त रामचरितमानस के प्रसंगों ने एकलव्य की कथा के विस्तार में सहयोग किया है।

श्री हरिवंश पुराण के हरिवंश पर्व का उन्तीस से तेंतीसवां श्लोक द्रश्टव्य है। जिसमें उल्लेख है कि श्रीकृष्ण के पिता श्री वासुदेव जी दस भाई हैं। उनमें देवश्रवा का यह पुत्र एकलव्य ही है जिसे जन्म के बाद ही त्याग दिया गया। उसे निषाद उठाकर ले गये। उन्होंने ही इसका पालन पोशण किया। इसका देवश्रवा निषाद पुत्र एकलव्य के नाम से इस पुराण में वर्णन है। श्री हरिवंश पुराण के भविश्य पर्व में एकलव्य के सैनिकों का निधन, एकलव्य और बलराम युद्ध, श्रीकृष्ण और पौण्ड्रक युद्ध ने एकलव्य की कथा को विस्तार, समृद्धि व पूर्णता प्रदान की है। महाभारत एवं श्री हरिवंश पुराण में उल्लिखित प्रसंगों को देखने से समेकित रूप से एकलव्य का क्रमबद्ध सम्पूर्ण जीवन वृत हमारे सामने आ जाता है।

मेरे छोटे भाई सदृश्य प्रिय एवं प्रख्यात कथाकार राजनारायण बोहरे ने इसके लेखन में जो सहयोग किया है इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी रहूँगा।

श्री रघुवीर दास कनकने दतिया एवं पं. गुलाम दस्तगीर, मुम्बई ने अपने विपुल अध्ययन, भाषा ज्ञान एवं श्री हरिवंश पुराण में उसे खोजने में सहयोग किया है।

इसके अतिरिक्त डा. भगवान स्वरूप शर्मा ''चैतन्य'', वेदराम प्रजापति ' मनमस्त ' डा. स्वतन्त्र सक्सेना, श्री विश्वेश्वरदयाल बोहरे एवं अन्य मित्रों ने बिम्व चयन में सहयोग किया है। उनका भी हृदय से आभार मानता हूँ।

दिनांक: 13 फरवरी 200517-7-2004

बसंतपंचमी रविवार राम गोपाल भावुक